अंक : 15

DOI: 10.528/Zenodo.11063568

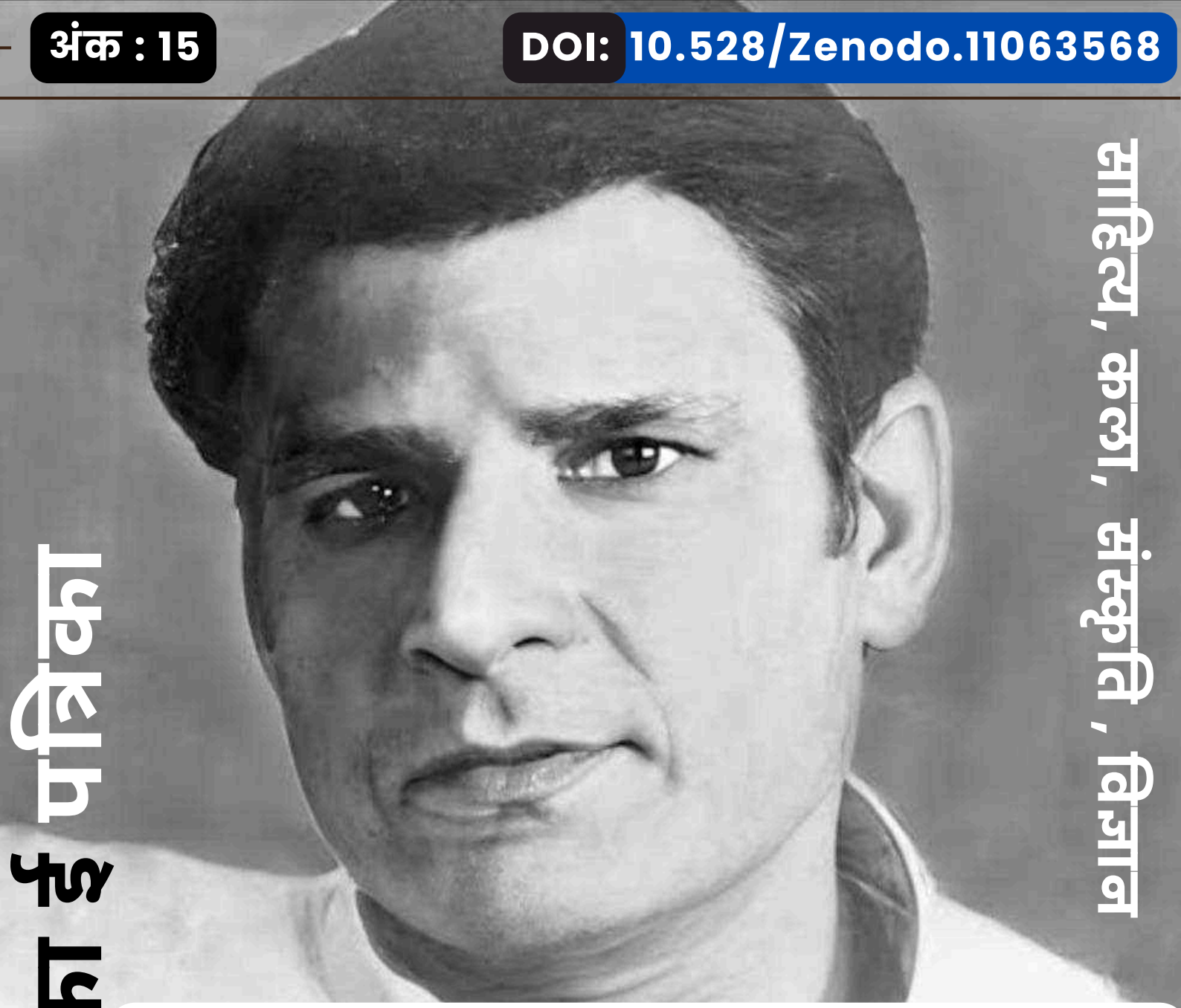

वीथिका पत्रिका

साहित्य, कला, संस्कृति, दर्शन, विज्ञान

दुष्यंत स्मृति : कविता विशेषांक

मैं जिसे ओढ़ता बिछाता हूँ
वो ग़ज़ल आपको सुनाता हूँ

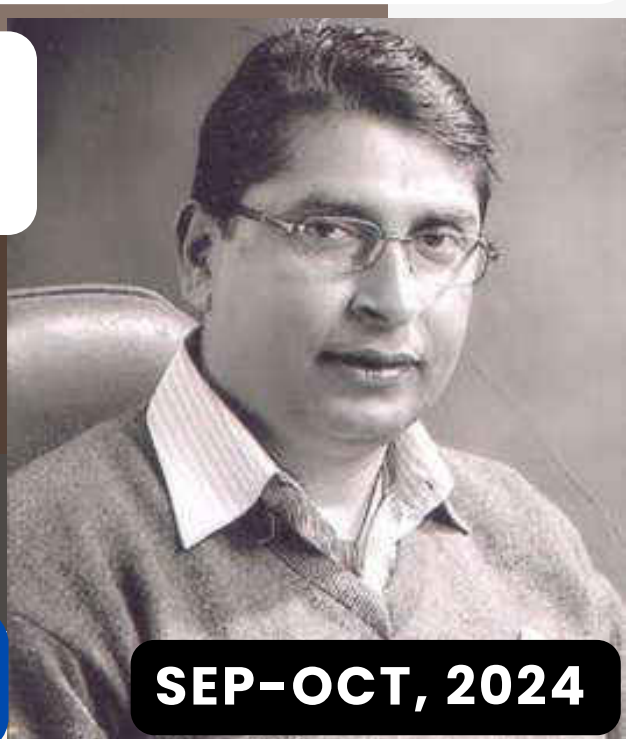

अतिथि संपादक

विनय मिश्र

WWW.VITHIKA.ORG

SEP-OCT, 2024

वीथिका ई पत्रिका

संपादक मंडल

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

चित्रा मोहन
मुख्य सलाहकार संपादक

सुमित उपाध्याय
प्रबंध संपादक

वीथिका परिवार

संरक्षक समिति
प्रो. विनय मिश्र
प्रो. प्रभाकर सिंह
डॉ. बिपिन कुमार मिश्र

वरिष्ठ सलाहकार संपादक
डॉ. आशुतोष तिवारी

वरिष्ठ सह संपादक
डॉ. सुधांशु लाल

वेब डिज़ाइन
रोशन भारती

संपादकीय समिति

डॉ अरुण कुमार सिंह
डॉ धनञ्जय शर्मा
श्री मनोज कुमार सिंह
एड. सत्यप्रकाश सिंह
श्री बृजेश गिरि
श्री नन्दलाल शर्मा

कवर पेज संपादक
अर्चिता उपाध्याय

कार्टून संपादक
कृतिका सिंह

सलाहकार परिषद
डॉ अखिलेश पाण्डेय
डॉ शिवमूरत यादव

प्रकाशक
उज्जवल उपाध्याय
यशिका फाउंडेशन, मऊ

UDYAM-UP 55 0010534

vithikaportal@gmail.com

www.vithika.org

वीथिका ई -पत्रिका

पत्रिका में छपे सभी लेख
लेखक के अपने विचार हैं

वीथिका ई पत्रिका

अंक: 15

विषय सूची :

गलियों की बात 04

अतिथि संपादक की गली 05

दुष्यंत वीथी 08

नये सूर्य सा दुष्यंत कुमार : चित्रा मोहन 11

समकालीन हिंदी कविता में ग़ज़ल
राजा अवस्थी 17

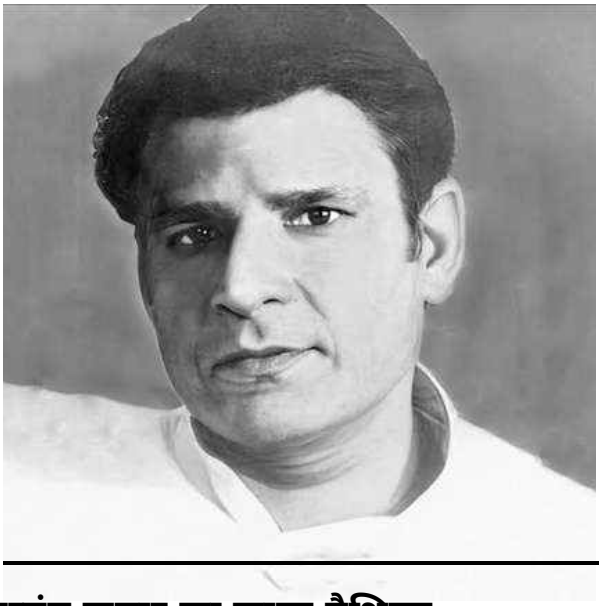

दुष्यंत कुमार का काव्य वैशिष्ट्य
शैरिल शर्मा 20

राजनीतिक चेतना के गज़लकार दुष्यंत
कुमार : राजेन्द्र वर्मा 22

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में सामाजिक
चेतना : रचना शास्त्री 25

समकालीन हिंदी और दुष्यंत कुमार
: डॉ रामावतार मेघवाल 28

काव्य वीथी 30

ग़ज़ल ,
समकालीन कविता,
नवगीत

स्केच आर्ट : विवेक मिश्रा 43

पुस्तक समीक्षा : डॉ कुमारी उर्वशी 44

विनय मिश्र की ग़ज़ल 46

कृतिका के कार्टून : कृतिका सिंह 47

Visit

WWW.VITHIKA.ORG

to download this current issue to
your tablet

वीथिका ई पत्रिका

गलियों की बात

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

दुष्यन्त कुमार जी को चन्द शब्दों में व्यक्त करना असम्भव है । आज के समय में उनकी कविताएं,नाटक हमें सामाजिक एवम राजनैतिक मुद्दों पर विचार करने हेतु बाध्य करते हैं। उनकी रचनाएं समाज में बदलाव लाने की प्रेरणा देती है तथा स्वतन्त्रता, प्रेम,मानवता की महत्ता को भी समझने में मदद करती हैं।

उनके राजनैतिक लेख जैसे “भारत की आजादी और समाजवाद" यह लेख भारत की स्वतन्त्रता तथा समाजवाद के बीच संबंध को दर्शाता है। साहित्यिक निबन्ध जैसे "हिन्दी साहित्य और राजनीति” हिन्दी साहित्य और राजनीति के बीच संबंध को दर्शाता है। उनका नाटक "कोल्हू का अक्स” ग्रामीण जीवन तथा सामाजिक परिवर्तन को दर्शाता है। अपनी कविता "पीर पर्वत सी हुई है" में इन्होंने जन-जन के भीतर जटिलताओं, विषमताओं से संघर्ष करने की ऊर्जा भर कर बदलाव लाने के लिए भी प्रेरित किया है।

यह अंक दुष्यंत जी की रचनाओं, उनके चित्रों, उन पर आलेख व उनकी परम्परा की कविताओं, गज़लों को संजोये हुए है ।

इस अंक के अतिथि संपादक हिन्दी साहित्यकार, प्रवक्ता डा० विनय कुमार मिश्र जी कविता को स्वान्त: सुखाय अथवा व्यक्ति विशेष की चरण वन्दना से निकालते हुए जन की पीड़ा तथा जीवन के सत्य से जोड़ते हैं। हिन्दी में ग़ज़ल को सरलतम बनाते हुए आम पाठक तक पहुंचाने में इनका अभूतपूर्व प्रयास अनवरत जारी है एवम अति प्रशंसनीय है। वीथिका ई पत्रिका परिवार आपका दिल से आभार तथा अभिवादन करती है।

वीथिका ई पत्रिका की पृष्ठ संख्या की सीमित सीमा होने के कारण बहुत सी रचनाएं हम इस अंक में शामिल नहीं कर पाए, पर आगे के अंकों में उन्हें निश्चित ही रखा जायेगा, वीथिका ई पत्रिका सभी लेखकों का सादर अभिवादन करती है।

पुनः यह सितम्बर-अक्टूबर का विशेष संयुक्तांक दुष्यंत कुमार को समर्पित .....

अतिथि संपादक की गली

समकालीन कविता का कबीर... दुष्यंत कुमार

कविता में आमजन की उपस्थिति एक बात है और आमजन में कविता की उपस्थिति दूसरी बात। हिंदी कविता को लेकर मेरे मन में यह बात आरंभ से ही रही है कि विस्तार समकालीनता बोध और दृष्टि संपन्नता के बावजूद आज की कविता पाठकों से आत्मीय संवाद नहीं करती। क्या कारण है कि दोहा, ग़ज़ल, गीत जिन्हें आलोचना के परिसर में अब तक प्रवेश नहीं मिला आज भी पाठकों और श्रोताओं के बीच उनकी उपस्थिति है जबकि मुक्त छंद की कविताएं एक अकादमिक घेरे में सिमट कर रह गई हैं। क्या कवियों में जीवन जीने की वह ललक,वह विह्वलता कमजोर पड़ रही है कि उनकी कविताओं की अपील का जन सामान्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा ? कविता अगर जीवन के पक्ष में खड़ी है तो उसे अपनी भाषा का पहरुआ होकर आमजन से एक रिश्ता कायम करना ही चाहिए। इसी रचना विमर्श के सूत्र यानी इसी चिंता को लेकर 'वीथिका ई पत्रिका' के इस कविता- अंक के संपादन का अवसर बन पाया तो मुझे लगा कि अपनी बात रखी जानी चाहिए। आखिर कविता जनता की अदालत में मनुष्यता के पक्ष में दिया गया बयान ही तो है। यह अदालत जिधर भी लगे कविता और कवि को उधर उपस्थित होकर अपने समय से संवाद के लिए प्रतिबद्ध होना ही चाहिए।

निराला से आगे मुक्त छंद कविता का जो रास्ता खुला। वह छंद मुक्त और लय मुक्त होता हुआ आज गद्य के फॉर्म तक पहुँच गया है। दूसरी तरफ आज छंदोबद्ध रचना लिखना दोयम दर्जे की कविता लिखने जैसा है। कविता जगत में एक रूढ़ि- सी स्थापित हो गई है कि चर्चा में रहने के लिए इसी गद्य के फॉर्म में लिखी जा रही कविता को साधना होगा। गीत, नवगीत , ग़ज़ल,दोहे आदि प्राचीन रूपों में आधुनिक जीवन बोध को व्यक्त करना संभव नहीं।

समकालीन हिंदी कविता में इस जड़ता को तोड़ने का काम पहली बार नई कविता के प्रतिनिधि कवि दुष्यंत कुमार ने किया। एक ईमानदार और साहसी व्यक्तित्व के धनी दुष्यंत कुमार ने सारा जीवन मुक्त छंद में काव्य सृजन में बिताया। उनके अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित और चर्चित हुए लेकिन जीवन के आखिरी दिनों में उन्होंने महसूस किया कि मुक्त छंद के नाम पर जिस कविता यात्रा में वे शामिल हैं, वह कविता पथ नहीं उनकी सुविधा का पथ है। कहते हैं कि कबीर जीवन के अंतिम दिनों में काशी छोड़कर मगहर चले गए थे- जनम सकल सिवपुरी गँवाया, मरत बार मगहर उठि धाया। काशी में मरने से ही मुक्ति मिलने की रूढ़ि को खत्म करने के लिए कबीर ने यह कदम उठाया। आधुनिक हिंदी कविता के कबीर दुष्यंत कुमार भी इसी कबीर की विद्रोही चेतना के साथ खड़े दिखाई पड़ते हैं। मुक्त छंद के रास्ते पर जीवन भर चलने के बावजूद जब दुष्यंत को यह लगा कि यह मुक्तछंदी कविता आमजन की संवेदनाओं की परख और निर्णय की स्वतंत्रता की बात तो करती है किंतु यह वह निर्णायक कविता नहीं है जिससे कोई आंदोलन धर्मी वातावरण तैयार हो सके और यह वह कविता भी नहीं है जिसमें आमजन की भावात्मक सहजता की अनुभूति स्वयं आमजन भी करे। बौद्धिक रंग में डूबी ये कविताएँ कुछ विशिष्ट लोगों की अध्यापकी और वक्तृता का आलंबन तो हो सकती हैं लेकिन ये कविताएँ ऐसे संबंध सूत्र विकसित करने में असमर्थ हैं जो आम हो या खास सभी का अपने में समावेश कर सकें।

दुष्यंत कुमार अपने अनुभव की कविता तक पहुँचाने के लिए जीवन के आखिरी पड़ाव में एक ऐसी विधा की तलाश कर पाने में सफल हुए जिसमें कवित्व के साथ-साथ भावात्मक सहजता भी थी और कविता की लय भी ताकि आम आदमी की आवाज सहजता से आम आदमी तक पहुँच सके, व्यापक रूप में उसका प्रभाव पड़े और वह आम आदमी की स्मृति में ठहर कर कविता को भी एक कलात्मक स्थायित्व दे सके ।

इसलिए दुष्यंत कुमार के रचनाकर्म से जुड़ना अपने समय की कविता से जुड़ना है, अनुभव की कविता से जुड़ना है और एक जेनुइन कवि के साहसिक कदम से जुड़ना है जिसके कारण हिंदी कविता और जन सामान्य के बीच एक रचनात्मक पुल का निर्माण संभव हुआ । कविता का यही लोकतांत्रिक चेहरा रेखांकित किए जाने योग्य है जिसकी कल भी जरूरत थी और आज भी जरूरत है।

उल्लेखनीय है कि दुष्यंत कुमार ने हिंदी कविता और आलोचना की मुख्य धारा के विरुद्ध जाकर ग़ज़ल में अपनी बात करने का नैतिक साहस दिखाया। यह सही है कि अपने आग्रहों के कारण हिंदी आलोचकों को दुष्यंत की सोच और समझ तक पहुँचने में दशकों लग गए। उनके समकालीन रचनाधर्मियों ने तो उनकी पूर्णतः उपेक्षा की लेकिन अपनी जनधर्मी दृष्टि के कारण एक जन कवि के रूप में आज दुष्यंत कुमार की मौजूदगी यह प्रमाणित करती है हिंदी कविता और परंपरा बोध की ऐतिहासिक दृष्टि ने उन्हें आज जनकवि के रूप में प्रतिष्ठा दी है। उन्होंने हिंदी कविता के एक ऐसे लोकपथ का निर्माण किया जिस पर चलकर पिछले 50 वर्षों

से हिंदी ग़ज़ल की यात्रा समृद्ध हुई है। आज लिखी जा रही कविताओं को पढ़कर कोई भी सुधी पाठक यह कह सकता है कि आज मुक्तछंद की कविताओं के साथ ग़ज़ल, गीत, नवगीत और दोहा आदि काव्यरूपों में भी गंभीर लेखन हो रहा है और उनका अपने समय से एक रचनात्मक संवाद भी है।

'वीथिका ई पत्रिका' के इस कविता विशेषांक के आयोजन के पीछे मेरी यही कोशिश रही है कि दुष्यंत कुमार की स्मृति में उनकी सोच और रचना संघर्ष को समझा जाए और इसी परिप्रेक्ष्य में समकालीन कविता के परिसर में उपस्थित विधाओं की एक संक्षिप्त रचनात्मक झलक यहाँ दिखाई जा सके। समकालीन कविता का वो पूरा चेहरा सबके सामने आ सके जिसमें सभी महत्वपूर्ण काव्य रूपों की रचनात्मक उपस्थिति है।

इस अंक का महत्व इस अर्थ में और भी बढ़ जाता है कि जिस युग प्रवर्तक कवि दुष्यंत कुमार ने अपनी रचनात्मक पहल से हिंदी कविता में एक ऐतिहासिक हस्तक्षेप किया, अगला वर्ष उनकी पुण्यतिथि का 50 वाँ वर्ष है और 'वीथिका ईपत्रिका' के संपादक मंडल ने ऐसे महत्वपूर्ण कवि के बहाने इस अंक के लिए अपनी बात रखने का मुझे एक अवसर प्रदान किया। यूँ भी एक सीमित समय और कलेवर में किसी विशेष अंक का संपादन मेरे लिए एक अलग ही चुनौती थी इसलिए आरंभ में इसे लेकर मेरे मन में बहुत संकोच भी था किंतु इस पत्रिका की मुख्य संपादक अर्चना उपाध्याय जी की विनम्रता और रचनात्मक आग्रह के कारण ही यह महत्वपूर्ण अंक आपके सामने आ सका है। मुझे इस बात का दुख है कि पत्रिका के सीमित कलेवर के कारण अनेक मित्रों की रचनाएँ इस अंक में आने से रह गई हैं। एतदर्थ क्षमा प्रार्थी हूँ।

मैं उन सभी मित्रों का आभारी हूँ जिनकी रचनाएँ इस अंक में आई है। ये रचनाएँ ही मेरी उम्मीद और ताकत हैं। जीवन के समग्र अनुभवों में रची पगी ये दृष्टिजनित कविताएँ और एक रचनात्मक विमर्श -

यह समकालीन कविता का एक नया आरंभ है। जहाँ कविता पर बात हो एवं काव्य रूपों के प्रति कोई दुराग्रह न हो। यही समावेशी भाव लेकर 'वीथिका ई पत्रिका ' का यह कविता विशेषांक आपकी अदालत में है। आपकी प्रतिक्रियाओं और सुझावों का स्वागत है। अंत में दुष्यंत कुमार को याद करते हुए :-

थोड़ी आँच बची रहने दो थोड़ा धुआँ निकलने दो
कल देखोगी कई मुसाफिर इसी बहाने आयेंगे

विनय मिश्र

मैं स्वीकार करता हूँ...

—कि ग़ज़लों को भूमिका की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए; लेकिन, एक कैफ़ियत इनकी भाषा के बारे में ज़रूरी है. कुछ उर्दू—दाँ दोस्तों ने कुछ उर्दू शब्दों के प्रयोग पर एतराज़ किया है .उनका कहना है कि शब्द 'शहर' नहीं 'शह्र' होता है, 'वज़न' नहीं 'वज़्न' होता है.

—कि मैं उर्दू नहीं जानता, लेकिन इन शब्दों का प्रयोग यहाँ अज्ञानतावश नहीं, जानबूझकर किया गया है. यह कोई मुश्किल काम नहीं था कि 'शहर' की जगह 'नगर' लिखकर इस दोष से मुक्ति पा लूँ,किंतु मैंने उर्दू शब्दों को उस रूप में इस्तेमाल किया है,जिस रूप में वे हिन्दी में घुल—मिल गये हैं. उर्दू का 'शह्र' हिन्दी में 'शहर' लिखा और बोला जाता है ;ठीक उसी तरह जैसे हिन्दी का 'ब्राह्मण' उर्दू में 'बिरहमन' हो गया है और 'ऋतु' 'रुत' हो गई है.

—कि उर्दू और हिन्दी अपने—अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के बीच आती हैं तो उनमें फ़र्क़ कर पाना बड़ा मुश्किल होता है. मेरी नीयत और कोशिश यही रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज़्यादा से ज़्यादा क़रीब ला सकूँ. इसलिए ये ग़ज़लें उस भाषा में लिखी गई हैं जिसे मैं बोलता हूँ.

—कि ग़ज़ल की विधा बहुत पुरानी,किंतु विधा है,जिसमें बड़े—बड़े उर्दू महारथियों ने काव्य —रचना की है. हिन्दी में भी महाकवि निराला से लेकर आज के गीतकारों और नये कवियों तक अनेक कवियों ने इस विधा को आज़माया है. परंतु अपनी सामर्थ्य और सीमाओं को जानने के बावजूद इस विधा में उतरते हुए मुझे संकोच तो है,पर उतना नहीं जितना होना चाहिए था. शायद इसका कारण यह है कि पत्र—पत्रिकाओं में इस संग्रह की कुछ ग़ज़लें पढ़कर और सुनकर विभिन्न वादों, रुचियों और वर्गों की सृजनशील प्रतिभाओं ने अपने पत्रों, मंतव्यों एवं टिप्पणियों से मुझे एक सुखद आत्म—विश्वास दिया है. इस नाते मैं उन सबका अत्यंत आभारी हूँ.

...और कम्लेश्वर! वह इस अफ़साने में न होता तो यह सिलसिला यहाँ तक न आ पाता. मैं तो

हाथों में अंगारों को लिए सोच रहा था,
कोई मुझे अंगारों की तासीर बताए.

—दुष्यन्त कुमार

समकालीन हिंदी ग़ज़ल परंपरा के कुछ यादगार शेर:-

हम तो सूरज हैं सर्द मुल्कों के
मूड आता है तब निकलते हैं

बस घड़ी भर के लिए काजल रहा है
उम्र भर इस आँख में बादल रहा है

एक ग़म था जो अब देवता बन गया
इक खुशी है कि वह जानवर हो गई

बाजार और युद्ध की अपने नियम रहे
ये और बात है कि निशाने पे हम रहे

जो उलझकर रह गई है फाइलों के जाल में
गाँव तक वह रोशनी आएगी कितने साल में

थोड़ी आँच बची रहने दो थोड़ा धुआँ निकलने दो
कल देखोगी कई मुसाफिर इसी बहाने आएँगे

प्यार का पहला खत लिखने में वक्त तो लगता है
नए परिंदों कोउड़ने में वक्त तो लगता है

मेरे दिल के किसी कोने में इक मासूम- सा बच्चा
बड़ों की देख कर दुनिया बड़ा होने से डरता है

नए सूर्य सा दुष्यंत कुमार

चित्रा मोहन

वरिष्ठ रंगकर्मी,निर्देशक
लखनऊ

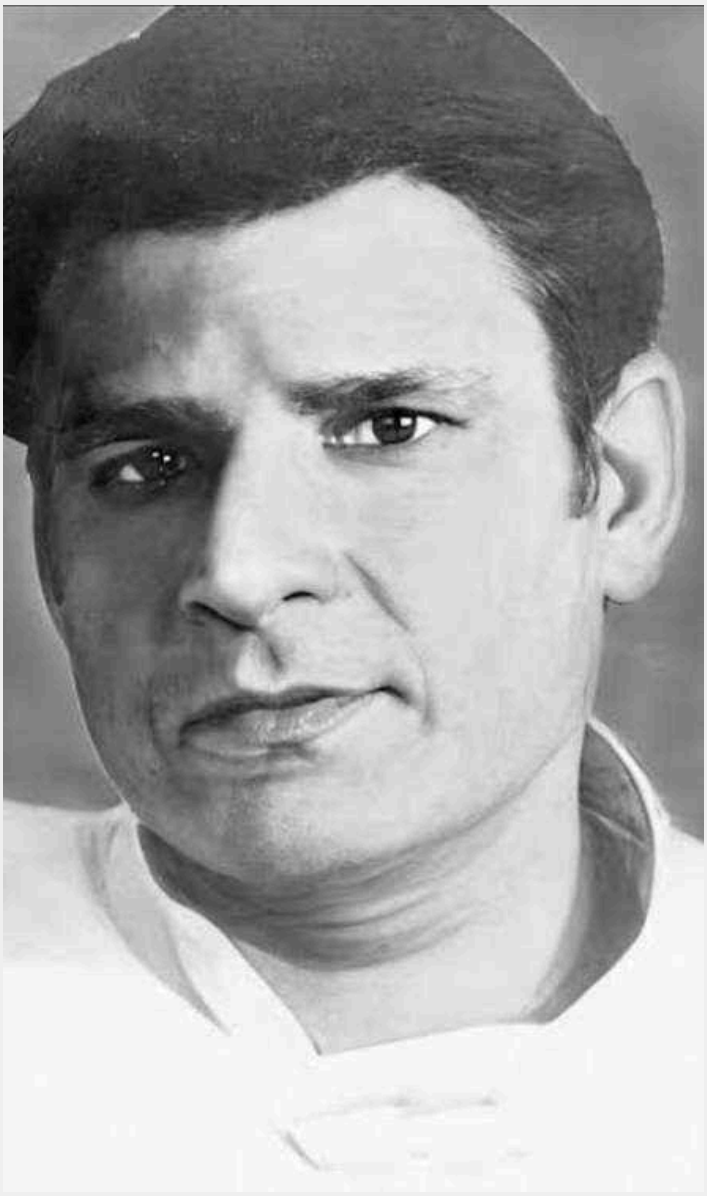

अपने प्रथम काव्य संग्रह “सूर्य का स्वागत” के साथ हिंदी साहित्य के समस्त विधानों को समेटते,उर्दू ग़ज़ल के मध्य हिंदी ग़ज़ल को चमकाने वाले दुष्यंत कुमार त्यागी को पढ़ कर महान कवि दिनकर ने कहा था कि”प्रयोगवादियों की सड़ांध के बीच इस गुलाब को सूंघना जरूरी है.....”

निदा फ़ाज़ली उनके बारे में लिखते हैं–

“दुष्यंत की नज़र उनके युग की नई पीढ़ी के ग़ुस्से और नाराज़गी से सजी बनी है। यह ग़ुस्सा और नाराज़गी उस अन्याय और राजनीति के कुकर्मो के ख़िलाफ़ नए तेवरों की आवाज़ थी, जो समाज में मध्यवर्गीय झूठेपन की जगह पिछड़े वर्ग की मेहनत और दया की नुमानंदगी करती है।"

1975 में उनका प्रसिद्ध ग़ज़ल संग्रह 'साये में धूप' प्रकाशित हुआ। इसकी ग़ज़लों को इतनी लोकप्रियता हासिल हुई कि उसके कई शेर

कहावतों और मुहावरों के तौर पर लोगों द्वारा व्यवहृत होते हैं। 52 ग़ज़लों की इस लघुपुस्तिका को युवामन की गीता कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसमें संगृहीत कुछ प्रमुख शेर हैं-

कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।
होने लगी है जिस्म में जुम्बिश तो देखिए,
इस परकटे परिंदे की कोशिश तो देखिए।
गूँगे निकल पड़े हैं जुबाँ की तलाश में,
सरकार के ख़िलाफ़ ये साज़िश तो देखिए।

इसके अतिरिक्त ये भी परखने योग्य हैं–

यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।

मत कहो आकाश में कुहरा घना है,
यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।

हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।
मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।

खास सड़कें बंद हैं कबसे मरम्मत के लिए,
ये हमारे वक्त की सबसे सही पहचान है।

मस्लहत आमेज़ होते हैं सियासत के कदम,
तू न समझेगा सियासत तू अभी इंसान है।

दुष्यंत कुमार की समसामयिक दृष्टि और संवेदना की अंतहीन यात्रा का उल्लेख बहुत महत्वपूर्ण है। आम जीवन की विसंगतियों से आहत दुष्यंत ही इस तरह से हिंदी भाषा की छतरी ताने, दुश्वारियों के साए में भी अडिग खड़े दिखते है,वे कहते हैं–

“कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।
यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है,
चलो यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।
न हो कमीज़ तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफ़र के लिए।
खुदा नहीं, न सही, आदमी का ख्वाब सही,
कोई हसीन नज़ारा तो है नज़र के लिए।”

दुष्यंत हिंदी जगत के उन चुनिंदा साहित्यकारों में से एक थे जिनकी रचनाओं को संसद से लेकर सड़क तक में पढ़ा गया। दुष्यंत एक परिवर्तनकामी रचनाकर हैं। वे जीवन की सहजता में विश्वास करने वाले लेखक हैं। अपनी अनुभूति को ईमानदारी के साथ पेश करते हैं। दुष्यंत की चेतना का विकास दरअसल आज़ादी के बाद के स्वप्नों, कठोर हक़ीक़तों, आज़ादी से मोहभंग और जनतंत्र के विरोधाभासों विसंगतियों और एक ऐसे भारत के बनने का अंग है जहाँ साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और कठोर व्यक्तिवाद का ताना-बाना है। दुष्यंत के किशोर मन में दो प्रकार के प्रश्न उठते थे जिनका उत्तर वे आज़ादी के बाद पाना चाहते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि दूसरे विश्व युद्ध और आज़ादी के बाद सब कुछ अपना है, लेकिन आज़ादी के बाद साम्प्रदायिकता के विस्फोटक रूप हमारे सामने आए। भष्ट्राचार के कई रूप पनपे।

धर्म की हदबंदियों ने संबंधों को, आपसी भाईचारे को लगभग खंडहर के रूप में तब्दील कर दिया। भूख, ग़रीबी, बेकारी, बेबसी, अत्याचार, अंधेरगर्दी, निरक्षरता, अन्याय, असमानता हड़बोग आदि ने हमारी विकास-प्रक्रिया को भयावह और क्रूर रूप में बाधित किया।

दुष्यंत का संवेदनशील मन इन प्रश्नों से सीधे-सीधे बेचैन हो उठता था। अपनी काव्य-यात्रा की शुरुआत से लेकर अपने आकस्मिक अवसान के बीच उनकी कविता में कई तरह के स्वप्न, कई तरह के यथार्थ, कई तरह की स्थितियां और कई तरह के अन्तर्विरोध एक साथ मिलते हैं। 1950 में लिखा उनका एक गीत देखें -

"चाहे कितना कसकर बाँधों यह तूफान न बंदी होगा
उठा आ रहा दूर एशिया की घाटी से विप्लव का स्वर।
सोने-चांदी की दीवारें हो जाएंगी खण्डहर-खण्डहर
करते हो उपहास हमारा किस बूते पर किस बल पर”

मैं जब-जब दुष्यंत की कविताओं और ग़ज़लों को पढ़ती हूं तो मुझे त्रिआयामी स्वर सुनाई पड़ते हैं। एक स्वर स्वीकार का है जो बहुत शांत और मद्धिम है, वहीं दूसरा अस्वीकार का है जो बहुत उद्धत और व्यापक परिवर्तन का आकांक्षी है, तीसरा स्वर आक्रोश का है। दरअसल दुष्यंत की प्रसिद्धि का क्षेत्र इसी तरह की कविताओं से बनता है और यही उनकी पहचान का अटूट सिलसिला भी है। दुष्यंत कुमार के मित्रों, शुभचिंतकों और प्यार करने वालों ने भी उनके मूड्स या यूं कहें कि उनके उस पक्ष को सामने रखा है जो उनके तई उन्हें अच्छा लगा।

'यारों के यार दुष्यंत कुमार' में कथाकार शानी दुष्यंत के बारे में कहते हैं, "संघर्ष यानी तथाकथित सफलता की लड़ाई जो उसके इस सबके बावजूद आख़िर तक नहीं मिली। हाँलांकि मैं जानता हूँ कि मिल भी जाती तो भी वह उसकी बेचैनी का इलाज नहीं थी। ...जल्दी, बेचैनी, खुलापन, बेलौस मस्ती, बेसब्री और अधैर्य से पैदा हुआ अंतरद्वंद्व, कविता ही नहीं उसकी ज़िंदगी का भी मिज़ाज था।"

दुष्यंत का एक गीत है जो उनके जज्बे को उनकी मनोसामाजिकी और उनके अटूट भरोसे के रूप में हम देख सकते हैं।

"ज़िंदगी ने कर लिया स्वीकार
अब तो पथ यही है।
अब उफनते ज्वार का आवेग मद्धम हो चला है,
एक हल्का-सा धुंधलका था कहीं कम हो चला है,
यह शिला पिघले न पिघले रास्ता नम हो चला है,
क्यों करूं आकाश की मनुहार
अब तो पथ यही है।
क्या भरोसा, कांच का घट है, किसी दिन फूट जाए,
एक मामूली कहानी है, अधूरी छूट जाए,
एक समझौता हुआ था रोशनी से टूट जाए,
आज हर नक्षत्र है अनुदार
अब तो पथ यही है।"
(जलते हुये वन का बसंत)

कवि दुष्यंत की भयावह चिंताओं में अन्याय, अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न, दोगलापन सब कुछ शामिल है। इसे हम केवल राजनैतिक सत्ताओं में ही नहीं धर्मसत्ताओं, समाजसत्ताओं

और अर्थसत्ताओं की व्यापक और बहुआयामी कार्यवाहियों में भी देख और अनुभव कर सकते हैं। इन सबकी शिनाख़्त भिन्न-भिन्न रूपों में दुष्यंत करते हैं -

‘‘हाथों में अंगारे लिये सोच रहा था,
कोई मुझे अंगारों की तासीर बताये।

दुष्यंत जनता के विश्वास को इस रूप में दर्ज़ करते हैं -

एक चिनगारी कहीं से ढूंढ लाओ दोस्तों,
इस दिये में तेल से भीगी हुई बाती तो है।
दुख नहीं कोई कि अब उपलब्धियों के नाम पर
और कुछ हो या न हो, आकाश सी छाती तो है।

दुष्यंत के यहाँ प्रश्न हैं, प्रश्नांकनों के रेले हैं, अंतरद्वंद्वों के विराट रूपाकार हैं। जीवन के संघर्ष हैं, ताप हैं। उनकी कवितायें इन्हीं वास्तविकताओं में से अस्तित्व में आती हैं। कुंअर बेचैन के शब्दों में कहा जा सकता है कि "वास्तव में दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में जो आग है वह उस व्यक्ति की आग है जो सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को ध्यान से देखकर अपने समाज के बीच रहकर उसकी पीड़ा को पूरी तरह समझते हुये भीतर ही भीतर सुलग रहा है।’’ ख़ुद दुष्यंत का आत्मालोकन भी देखें जब वे कहते हैं, "मेरे पास कविताओं के मुखौटे नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रायें नहीं हैं और अजनबी शब्दों का लिबास नहीं है। मैं एक साधारण आदमी हूँ और इतिहास और सामाजिक स्थितियों के संदर्भ में साधारण आदमी की पीड़ा, उत्तेजना, दबाव, अभाव और उसके संबंधों के उलझनों को जीता और व्यक्त करता हूँ।" (जलते हुये वन का बसंत की भूमिका)

दुष्यंत के बारे में कई तरह से कहा जा चुका है। कई तरह से कहने का रिवाज़ उनकी ग़ज़लों के बारे में रहा है। सम्पूर्ण क्रांति के आविष्कर्ता जयप्रकाश नारायण के बारे में उनके शेर देखें -

‘‘एक बूढ़ा आदमी है मुल्क़ में या यों कहो-
इस अंधेरी कोठरी में एक रोशनदान है।
मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ।
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।”

उन्होंने शेर कहे भी तो प्रतीकों और रूपकों में। कभी यथार्थ के दायरे में भी कभी व्यंग्य और विद्रूप में। ‘साये में धूप’ की ग़ज़लों में सत्ता प्रतिष्ठान और उस कालखण्ड में चल रहे घमासानों की पुरजोर प्रतिरोध की ही आवाज़ है। हालांकि कुछ ग़ज़लें उनके रोमेंटिक अंदाज़ को भी प्रस्तुत करती हैं। कुछ शेर पर नज़र डालें -

चाँदनी छत पर चल रही होगी,
अब अकेली टहल रही होगी।
फिर मेरा जिक्र आ गया होगा,
वों बरफ़ सी पिघल रही होगी।

अपनी ग़ज़लों में वे उस राजनीति के चरित्र पर प्रहार करते हैं जिसमें छल है, धोखा है, फ़रेब है, वादा ख़िलाफ़ी है, अंधेरगर्दी है। सच तो यह है कि अपनी ग़ज़लों में वे अच्छे खासे पैंतरे अपनाते हैं। कभी सीधे, कभी उलटे, कभी छाती ठोंककर जैसे -

"मत कहो आकाश में कुहरा घना है ,
यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है ।
इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछी है
हर किसी का पांव घुटनों तक सना है।"

दुष्यंत में अफसोस की मुद्रायें हैं, अपनी स्थिति पर, अपनी बेचारगी पर और अपने अंतरद्वंद्वों के बारे में दुश्चिंतायें हैं।

बदलते हुये संदर्भों में सामाजिक स्थितियों ने आदमी को सोचने पर मजबूर कर दिया है।
यहाँ तो सिर्फ़ गूंगे और बहरे लोग बसते हैं
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।
रोज़ जब रात को बारह का गजर होता है
यातनाओं के अँधेरे में सफर होता है।

दुष्यंत की ग़ज़लों में मानवीय संवेदना के, हमारी टूटन और हताशा के हमारे अनुभवों की दुनियां के व्यापक रूपाकार हैं और संवेदनशीलता की अनेक तहें हैं। इन तहों में जीवन के हाहाकार दुख-दैन्य, निराशायें और पश्चाताप भी शामिल हैं। बानगी के तौर पर कुछ स्थितियां देखें -

यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियां
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।

ये रोशनी है हक़ीक़त में एक छल लोगो,
कि जैसे जल में झलकता हुआ महल लोगो!

भारत में छठवें दशक के बाद गणतंत्र की विडम्बनाओं के कई रूप मिलते हैं। अविश्वसीनयता, काहिली, भ्रष्टाचार, कठहुज्ज़ती, नौकरशाही, छल प्रपंच, धोखा। इनसे परेशान दुष्यंत कुमार ने कई ग़ज़लें लिखी हैं। उनमें से कुछ शेर यहाँ पेश हैं -
मरूस्थल आमेस होते है सियासत के क़दम,
तू न समझेगा सियासत, तू अगर इंसान है।
ख़ास सड़कें बंद हैं, तब से मरम्मत के लिये,
ये हमारे वक़्त की सबसे सही पहचान है।
इस तरह की ग़ज़लों में दुष्यंत ने अपना प्राण जैसा उड़ेल दिया है।

अपनी तथा समाज की पीड़ाओं को एकाकर कर उन्हें सरेआम कर दिया है। उनके शब्दों का ताप और विश्वसनीयता हमें अपनी ओर खींचती है। उनकी कविता का लोहा बजता है, उनकी कविता की आग बहती है और उसकी ऊष्मा हमें प्रभावित करती है। विजय बहादुर सिंह के शब्दों में "सच तो यह है यह एक ऐसी कविता थी जो सच्चे और गहरे अर्थों में राजनीतिक थी और अपने समय की जनविरोधी राजनीति को नंगा कर रही थी।"
भारतीय जनतंत्र के हालातों पर, देश में हो रही गड़बड़ियों पर, छली जाती हुई जनता की वास्तविकताओं पर, कथनी और करनी के अंतर पर, देश में हो रहे छल-प्रपंचों पर दुष्यंत की चौकस निगाह रही है, इसलिए वे जिस तरह अनुभव करते हैं उसका बखान बिना किसी लाग लपेट के करते हैं। उनके रचनाकार को अपने इरादों को अभिव्यक्त करने में कोई हिचक नहीं हुई। उनकी यह ईमानदारी उन्हें कवियों की पंक्ति में अलग रूप से चिन्हित करती है। दुष्यंत कुमार के असामयिक निधन के बाद भारतीय लोकतंत्र में तरह-तरह के रूप आये। आज़ादी और लोकतंत्र निरंतर परिपक्व हुये। आपात काल के दुःस्वप्न के बाद साम्प्रदायिकता, आतंकवादी गतिविधियां लगातार बढ़ रही हैं। अभिव्यक्ति की आज़ादी को बाधित करने का षड़यंत्र रचा जा रहा है। हर सोचने समझने वाला, लिखने-पढ़ने वाला ऐतिहासिक विकास क्रम और वैज्ञानिकता को समझने वाला और कलात्मक दुनिया से जुड़े लोग अपने आप को असहाय और लाचार अनुभव कर रहे हैं। प्रजातांत्रिक मूल्यों और आस्थाओं को जलील किया जा रहा है।

देश की सांस्कृतिक धारायें सद्भाव और समन्वय की भावनाओं पर हमले प्रायः घटित होने वाले सच हैं। दुष्यंत की रचनात्मक कार्यवाहियाँ, उनके द्वारा किये गये हस्तक्षेप और प्रतिरोध अभी भी जनगण की बहुत बड़ी ताक़त हैं। घनघोर अँधेरे में रोशनी का फैलाव है।

इस सिरे से उस सिरे तक सब शरीके जुर्म हैं
आदमी या तो ज़मानत पर रिहा है या फ़रार।

मैं बेपनाह अँधेरों को सुबह कैसे कहूँ
मैं इन नज़ारों का अंधा तमाशबीन”

दुष्यंत तो जा चुके हैं लेकिन उनकी आवाज़ सदियों तक गूंजती रहेगी, पीर पर्वत सी हो गई और पिघलती रहेगी,सुनो लोगों,कैसे आकाश में सुराख नही हो सकता एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारों,कह कर पुकारती रहेगी।

समकालीन हिन्दी कविता में ग़ज़ल

राजा अवस्थी
कटनी, मध्यप्रदेश

किसी भी भाषा, देश और जाति का इतिहास उस भाषा देश और जाति की कविता का उल्लेख किए बिना नहीं लिखा जा सकता। कविता किसी भी देश, भाषा अथवा जाति के इतिहास के लिए सर्वाधिक प्रामाणिक दस्तावेज भी होती है। विशेष रूप से वह कविता, जिसे राज सत्ता का संरक्षण प्राप्त न रहा हो। संरक्षण प्राप्त न होने का एक अर्थ यह भी है कि वह कविता राज-सत्ता के पक्ष में भोंपू की तरह इस्तेमाल नहीं की जा सकी। वह कविता और कवि भी राज्य सत्ता की किसी भी तरह की दृष्टि की परवाह नहीं करते, इतना ही नहीं, इस तरह की कविता हर तरह की सत्ता, चाहे वह राज्य सत्ता हो, आर्थिक सत्ता हो, अथवा धार्मिक सत्ता हो, सभी को उसकी गलतियाँ बहुत तीखे और तिलमिला देने वाले अंदाज़ में बताती रहती है। इस बात के प्रमाण हमें कबीर से लेकर निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर , नेपाली, नागार्जुन, दुष्यंत कुमार, अदम गोडवी, गोरख पांडेय और सफदर हाशमी से होते हुए विनय मिश्र तक और उनके समकालीन कवियों में भी मिलते हैं। यहाँ यह कहना ज़रूरी लग रहा है कि कविता में सत्ता से उसके तानाशाही रवैया और सामाजिक ताने-बाने के बीच पनपते कुविचारों कुप्रवृत्तियों, हावी होती बाज़ारी प्रवृत्ति के खिलाफ डटकर खड़ी रहने वाली कविता की एक लंबी परंपरा दिखाई पड़ती है। इस तरह डट कर खड़े रहने, भिड़ जाने का अर्थ यह भी है, कि सच्ची कविता का यह तेवर, उसके सच के पक्ष में खड़े रहने की इच्छा और सच बयानी, उसके जनपक्षधर होने के कारण ही है। कविता की यह पक्षधरता ही उसे जन के बीच लोकप्रिय बनाकर लंबा जीवन देती है। उसे जन के हाथों हथियार भी बना देती है। कविता के जन के पक्ष में हथियार की तरह इस्तेमाल होने के अनेकों प्रमाण हैं। प्रमाण के रूप में राम प्रसाद बिस्मिल, गोपाल सिंह नेपाली, दिनकर ,अदम गोंडवी, दुष्यंत कुमार ,गोरख पांडेय, त्रिलोचन जैसे कई नाम लिए जा सकते हैं।

हमारे यहाँ हिंदी में छायावाद के बाद ही कवियों की एक ऐसी पीढ़ी अस्तित्व में दिखाई देती है जिसने अपनी सृजनात्मक क्षमता का एक हिस्सा इस बात के लिए झोंक दिया कि कविता का कोई आंदोलन उनके नाम पर चल निकले। इस बात का परिणाम यह हुआ कि प्रगतिशील कविता, प्रयोगवादी कविता और नई कविता के बाद सत्तर के दशक में कविता के नाम पर कई तरह के नामों वाली कविता पर केंद्रित वादों की घोषणा की गई। यह नाम अकविता से लेकर बीट कविता पसरे हुए थे।

अच्छा यह हुआ कि ये सत्तर के दशक को पार नहीं कर पाए और आठवें दशक में कविता ने पुनः एक जुझारू तेवर अपना लिया। इस दौर में जहाँ गद्य कविता, जनवादी कविता और नवगीत की उपस्थित दिखाई पड़ती है वही हिंदी ग़ज़ल भी अपने पूरे तेवर के साथ खड़ी मिलती है। छायावाद के बाद जहाँ कविता को कई कई नाम देने की ज़रूरत महसूस की गई थी, वही आठवें दशक में आकर नामकरण की परंपरा में एक ठहराव आ जाता है। यहाँ आकर सिर्फ तीन नाम दिखाई पड़ते हैं पहला मुक्त छंद की कविता जिसे समकालीन कविता कहा गया। दूसरा नवगीत, तीसरा जनवादी कविता या जन गीत जो एक तरह से मुक्त छंद कविता में या नवगीत में ही समाहित हो जाता है। यहाँ एक चौथा नाम भी हिन्दी कविता में उपस्थित भी था और लोकप्रिय भी, किन्तु आलोचना को अँधेरे की ओर ले जाने वाले आलोचकों ने इसका जिक्र नहीं किया। उल्लेखनीय बात यह है कि कविताओं की काल सापेक्ष प्रवृत्ति और कई विशेषताओं के चलते उन्हें नाम देने या नाम को प्रमाणित करने का काम परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से आलोचक करते रहे हैं। इस बीच अचंभित करने वाली कुछ घटनायें दबे पाँव चोर दरवाज़े से घटित हो गई। एक तो यह कि गद्य कविता को ही समग्र कविता का पेटेंट दे दिया गया। दूसरा यह कि हिंदी ग़ज़ल को चुपचाप पूरी नासमझी के साथ हिंदी काव्यालोचना से बाहर रखा गया।

यद्यपि समकालीनता का जो तेवर हिंदी ग़ज़ल ने अपने आरंभ से ही दिखाया है, वैसा गद्य कविता में भी नहीं रहा। जनगीत व जनवादी गीतों ने अवश्य उसका साथ दिया।

हिंदी ग़ज़ल की एक लंबी परंपरा कबीर, भारतेंदु, निराला, बलबीर सिंह रंग, रुद्र काशिकेय, त्रिलोचन, शमशेर से लगातार चली आ रही थी और इनकी भाव-दृष्टि भी उर्दू ग़ज़लों से भिन्न थी । आठवें दशक से हिंदी ग़ज़ल ने जो तेवर दिखाए, वह चौंकाने वाला था। दुष्यंत ने अपनी ग़ज़ल से हिंदी कविता में ग़ज़ल की लोकप्रियता को ऊँचाई पर पहुंचा दिया। अदम गोंडवी की ग़ज़लें भी जन-जन की ज़ुबान पर आ गईं। इस दौर में और इस दौर के बाद भी हिंदी ग़ज़ल से हिंदी कविता को समृद्ध करने वाले कवियों की लंबी फेहरिस्त रही है। इस सच के साथ एक कड़वा सच यह भी है, कि हिंदी ग़ज़ल को हिंदी कविता की चर्चा में शामिल नहीं किया गया, जबकि उसकी उपस्थिति और हिन्दी कविता में उसकी हिस्सेदारी भरपूर रही है।

आठवें दशक से लेकर अब तक की कविता को, कवियों और कविता के आलोचकों - प्राध्यापकों ने समकालीन कविता नाम दिया। कविता के इन आलोचकों की नज़र में कविता और समकालीन कविता केवल वही कविता है जो गद्य के फॉर्म में लिखी गई हो। इस तरह गीत-नवगीत , दोहा और ग़ज़ल, सब को कविता के दायरे से बाहर रखा गया। यहाँ तक कि जो पत्रिकायें साल भर अपने हर अंक में ग़ज़लें छापती रहीं, ग़ज़ल की पुस्तकों पर समीक्षाएं छापती रहीं, उन्हीं पत्रिकाओं में जब वर्ष के अंत में उस वर्ष में हिंदी कविता की प्रकाशित पुस्तकों की सूची प्रकाशित की जाती, तो उनमें किसी ग़ज़ल संग्रह का नाम नहीं होता था। लेकिन छद्म और प्रपंचों को अंततः खत्म होना ही था, वे खत्म हुए भी। आज नवगीत और हिन्दी ग़ज़ल, दोनों समकालीन कविता के केन्द्र में हैं।

समकालीन कविता में हिंदी ग़ज़ल की चर्चा चाहे आलोचना के अँधेरे कोने में खड़े रहने वाले आलोचकों ने न की हो, किंतु ग़ज़ल, कवियों ही नहीं आम पाठक और श्रोताओं के बीच निरंतर लोकप्रिय रही है व इसकी लोकप्रियता में वृद्धि ही होती गई है। इस लोकप्रियता के कारणों में जहाँ ग़ज़ल की विषय वस्तु, लय की व्याप्ति और उस ग़ज़ल का ऐसा शिल्प जिससे उस लय की व्याप्ति का प्रसार श्रोता या पाठक के भीतर तक होता है, रहा। इसमें हिंदी ग़ज़ल का कथ्य व उसकी विषय वस्तु और भी अधिक महत्वपूर्ण कारण है। गद्य कविता जहाँ लगभग अपने हर दौर में अपने कवियों के अंतर्विरोध का शिकार रही, वहीं ग़ज़ल ने जन की भावना से स्वयं को सम्पृक्त रखा और जन-जन के लिए सबसे ज़रूरी मुद्दों पर बात की।

समकालीन कविता का समय सातवें दशक के अंतिम वर्षों व आठवें दशक के प्रारंभ से निरंतर माना जा रहा है। हिंदी ग़ज़ल आधुनिक काल में व उससे भी पहले से हिंदी कविता संसार में उपस्थित रही है, किंतु दुष्यंत ने ग़ज़ल को जो तेवर प्रदान किया उसने ग़ज़ल को आम आदमी की ज़ुबान बना दिया। यद्यपि दुष्यंत के पहले भी कई कवि हिंदी ग़ज़ल लेखन में सक्रिय थे, किंतु दुष्यंत के बाद तो हिंदी कविता में हिंदी ग़ज़ल ने जो अपना हस्तक्षेप किया , फिर उसकी उपस्थिति का अनुपात बढ़ता ही गया और आज हिंदी ग़ज़ल समकालीन काव्यधारा की एक प्रमुख विधा है। मैं हिंदी ग़ज़ल को जब समकालीन कविता की एक प्रमुख विधा कहता हूँ, तो उसके आधार में हिंदी ग़ज़ल की वे विशेषताएँ हैं, जो यह प्रमाणित करती हैं कि समकालीन कविता यानी गद्य कविता के आलोचक गद्य कविता की, जिस नयी जीवनदृष्टि, नयी चेतना, नयी भाव-भूमि, नयी संवेदना, समकालीनता बोध, सामाजिक यथार्थ, सपाट बयानी के साथ राजनीति तथा व्यंग्य आदि विशेषताओं की पहचान करते हैं, वे सभी विशेषताएँ हिंदी ग़ज़ल में पूरी तरह पाई जाती हैं। हिंदी ग़ज़ल अपने समकाल के अंतर्विरोधों, अंतर्द्वन्द्वों, विसंगतियों, विषमताओं एवं विडम्बनाओं का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। आम आदमी की पीड़ा, उसके तनाव, उसकी विवशता, अकेलापन, आक्रोश, कटु अनुभव को पूरे पैनेपन और प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त करने के कारण समकालीन ग़ज़ल हमारे समकाल कीहिंदी कविता के महत्वपूर्ण काव्यरूप के रूप में स्थापित हुई है।

समकालीन गद्य कविता ऐसे समय में अस्तित्व में आती है जब भारत राजनैतिक उथल-पुथल से आक्रांत था। आपातकाल और उसके बाद सत्ता में आईं अलग-अलग विचारधाराओं , अलग-अलग दलों की सरकारों तथा आपातकाल के पूर्व जिस परिवर्तनकारी क्रान्ति की आहट यहाँ के कवि सुन रहे थे, उसके लगातार समाप्त होते जाने, धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर सत्ता के लिए या सत्तापोषित बाज़ारवाद, भ्रष्टाचार, सांप्रदायिकता के छा जाने, जनहित के नाम पर भी जन के गौण होते जाने से भारतीय जन लगभग प्रतिक्रियाविहीन सा हो गया। उसके भीतर सामूहिक विरोध के बीज सो गए से लगने लगे। इतने सारे परिवर्तनों ने कवि को भी इस प्रभाव से दूर नहीं रहने दिया। यही वजह भी रही कि समकालीन गद्य कविता में सपाट बयानी आती गई। यह सपाट बयानी जैसी गद्य कविता में दिखाई पड़ती है, वैसी नवगीत और हिंदी ग़ज़ल में नहीं है, बल्कि यहाँ जो महत्वपूर्ण हुआ, वह यह कि नवगीत और हिंदी ग़ज़ल में वाक्य-विन्यास गद्यात्मक वाक्य के निकट आया है। हिंदी ग़ज़ल ने अपनी कहन को और प्रभावी बनाया है। आपातकाल के आसपास के समय को छोड़ दें, तो समकालीन गद्य कविता और नवगीत में

भी कोई अधिक परिवर्तनकामी कविताएँ दिखाई नहीं पड़तीं, तब भी हिंदी ग़ज़ल ने अपने भीतर उस तेवर को बनाए रखा और समकालीन कविता में हिंदी ग़ज़ल लगातार जन की बात करती रही, उसकी भाषा, आम जन के निकट भी आती गई।

ऊपर हिंदी ग़ज़ल में जिस फेहरिस्त की बात हम कर रहे थे, वह सचमुच बहुत लंबी है, किंतु हम अपने समकाल में ग़ज़ल कहने वाले समकालीन कवियों की चर्चा अवश्य करेंगे। सूर्यभानु गुप्त, , उद्भ्रांत, हरे राम समीप, विनय मिश्र, राजेश रेड्डी, देवेंद्र आर्य,राम मेश्राम, महेश अग्रवाल,माधव कौशिक, रामकुमार कृषक,उद्भ्रांत,ओम रायजादा, गणेश गंभीर, गिरिराज शरण अग्रवाल, जहीर कुरेशी, विनोद तिवारी,जय चक्रवर्ती,देवेंद्र कुमार पाठक 'महरूम', राजेन्द्र वर्मा,ओमप्रकाश यती, कुमार विनोद, केशव शरण,आदि अनेक व्यक्तित्व, समकालीन ग़ज़ल के महत्वपूर्ण कवि हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई नाम है जो ग़ज़ल लेखन में सक्रिय हैं। समकालीन हिंदी काव्यधारा की महत्वपूर्ण कविता समकालीन हिंदी ग़ज़ल से कुछ उदाहरण भी देख लेते हैं जिनमें हम समकालीन कविता के लक्षणों की पहचान कर सकते हैं। देखें -

मुक्तिकामी चेतना अभ्यर्थना इतिहास की
यह समझदारों की दुनिया है विरोधाभास की

****

जो बदल सकती है इस दुनिया के मौसम का मिज़ाज
उस युवा पीढ़ी के चेहरे की हताशा देखिए
अदम गोंडवी

****

एक गुड़िया की कई कठपुतलियों में जान है
आज शायर यह तमाशा देखकर हैरान है
मुझ में रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है

****

आज सड़कों पर लिखे हैं सैकड़ों नारे न देख
पर अंधेरा देख तू आकाश के तारे न देख
अब यकीनन ठोस है धरती हकीकत की तरह
यह हकीकत देख लेकिन खौफ के मारे न देख
दुष्यंत कुमार

हम नहीं खाते हमें बाजार खाता है
आजकल अपना यही चीजों से नाता है
है खरीदारी हमारी सब उधारी पर
बेचने वाला हमें बिकना सिखाता है

बीज बोए थे खुशी के खुदकुशी बोई न थी
चार कंधों पर फसल ऐसी कभी ढोई न थी
हर तरफ गुलजार है बाजार जी चाहे जो लो
मिरजई-धोती के हाथों में नई लोई न थी
रामकुमार कृषक

****

देखता जा कि तेरे सामने आता क्या है।
मीडिया हमको लगातार दिखाता क्या है
रूह की जिस्म की अस्मत की नुमाइश नंगी
रोज बाजार ये हर घर में सजाता क्या है

राम मेश्राम

****

अखबारों में असर नहीं है
कोई अच्छी खबर नहीं है
दुराचार की कथा व्यथा से
एक अछूता नगर नहीं है
विनोद तिवारी

****

तुम न बतलाओ भले राजी खुशी दिल्ली
मैं तुम्हेंमहसूस करता हूँअरी दिल्ली
है कहाँ ताजाहवा सच की मगर देखो
राजपथ परशान से है झूठ की दिल्ली
मैं किसे चाहूँ नचाहूँ बात छोटीहै
पर ये भी तय कर रही है अब नयी दिल्ली

डॉ. विनय मिश्र

इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी काव्यालोचना में आलोचकों की हठधर्मी एकांगी सोच ने जिस तरह समूची हिन्दी कविता को अपनी काव्यालोचना में शामिल न करके अपने समय की आलोचना की प्रामाणिकता को ही संदिग्ध कर दिया, अब उसका पटाक्षेप हो रहा है। हिन्दी ग़ज़ल समकालीन हिन्दी कविता की महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित है। अब आलोचकों को भी यह समझ लेना होगा कि किसी विधा विशेष को स्थापित करने के लिए अन्य विधाओं की चर्चा न करने से उस आलोचना पर ही प्रश्नचिह्न लगता है।

दुष्यंत कुमार का काव्य वैशिष्ट्य

शैरिल शर्मा
गाजियाबाद,उ.प्र.

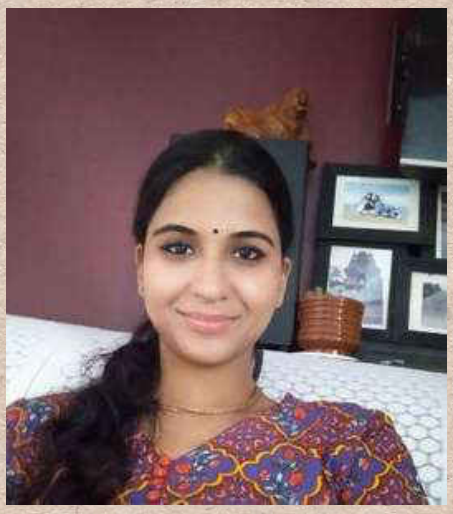

दुष्यंत हिन्दी-साहित्य के समकालीन कवियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनकी कविता जनमानस की कविता है। दुष्यंत की रचनाओं का मिजाज बदलाव के पक्ष में है। वह राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में बदलाव चाहते हैं । तभी तो वह दरख्त के नीचे साये में भी धूप लगने की बात करते है और वहाँ से उम्र भर के लिए कहीं और चलने को कहते है। वह तो पत्थर दिल लोगों को पिघलाने में विश्वास रखते है। उनकी रचनाओं ने सहज विश्वास के साथ मध्यवर्गीय व्यक्ति के आत्म-संघर्ष और उसकी छटपटाहट को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

'आदमी होंठ चबाए तो समझ आता है
आदमी छाल चबाने लगे, ये तो हद है'

अतः यह कहना कि दुष्यंत कुमार समकालीन हिन्दी कविता के एक समर्थ हस्ताक्षर हैं, सार्थक प्रतीत होता है। दुष्यंत का काव्य-वैशिष्ट्य इस तथ्य का सहज प्रमाण है। वे ऐसे कवि हैं जिन्होंने प्रसिद्धि पाने या अपनी पहचान बनाने के लिए न कभी अपनी लेखनी को किसी संकुचित सीमा में आबद्ध किया और न ही अपने लेखकीय उत्तरदायित्व के साथ कभी समझौता किया।

इनकी लेखनी में निहित 'जन-प्रतिबद्धता' इन्हें अपने समकालीनों से अलगाकर विशिष्ट पहचान देती है। दुष्यन्त का भाव-पक्ष आधुनिक संदर्भों से जुड़ा हुआ हैं साथ ही दुष्यंत के काव्य में आम आदमी की घुटन, छटपटाहट और कराह का स्वाभाविक चित्रण है। अपने चारों ओर से षड्यंत्र और क्षोभ का वातावरण भी कवि स्पष्ट देखता है और देखता है, क्षुद्र तथा स्वार्थी मनोवृत्तियों को। उदाहरणार्थ ....

'हम जो स्वयं को तैराक कहते हैं,
किनारों की परिधि से कब गये आगे?
इसी इतिवृत्त में हम घूमते हैं,
चूमते हैं पर कभी क्या छोर तट का।'

दुष्यंत की कविताएं सामाजिक यथार्थ का चित्रण करती हैं । दुष्यंत कुमार आस्थावादी हैं। वे आस्था के कवि हैं, साथ ही जीवन के यथार्थ बोध का जितनी सुंदरता के साथ वर्णन करते हैं वह अद्वितीय है। उनकी कविता 'सूखे फूलः उदास चिराग' निराशावादी परिस्थिति से उपजा हुआ असंतोष है :-

'आज लौटते घर दफ़्तर से पथ में कब्रिस्तान दिखा
फूल जहाँ सूखे बिखरे थे और' चिराग़ टूटे-फूटे
यों ही उत्सुकता से मैंने थोड़े फूल बटोर लिये
कौतूहलवश एक चिराग़ उठाया औ' संग ले आया
थोड़ा-सा जी दुखा, कि देखो, कितने प्यारे थे ये फूल
मैं क्या कहता आखिर उस हक लेनेवाली पीढ़ी से
देने पड़े विवश होकर वे सूखे फूल, उदास चिराग'

यही विधान है और अंतिम नियति।

आज का मनुष्य महत्वाकांक्षी है किन्तु अंदर से वह खोखला है। उसका पुरुषार्थ खंडित है। 'भविष्य की वंदना' में पुरुषार्थ की बातें उन्होंने प्रमुखता से उठाई हैं:-

'खंडित पुरुषार्थ गांडीव की दुहाई देता हुआ,
निष्क्रिय है कर्म नहीं-केवल अहंकार को जगाता है!'

दुष्यंत कुमार की कविता का भी जन्म दर्द से हुआ है। इसलिए उसमें आम आदमी का दर्द हैं।

'कई फाके बिताकर मर गया, जो उसके बारे में
वो सब कहते हैं अब, ऐसा नहीं, ऐसा हुआ होगा।'

आज समाज में जनसाधारण की चीत्कारों एवं करुण क्रन्दन से

कवि का हृदय दहल उठता है और समाज के चारों छोरों से आने वाली आवाजों की प्रतिध्वनियाँ उसकी आत्मा से टकरा-टकरा कर उसे मर्माहत करती हैं और उसे अपना कवि जीवन व्यर्थ प्रतीत होने लगता है-

'मित्रों !
मेरे व्यक्तित्व
और मुझ-जैसे अनगिन व्यक्तित्वों का क्या मतलब ?
मैं जो जीता हूँ
गाता हूँ
मेरे जीने, गाने
कवि कहलाने का क्या मतलब ?
जब मैं आवाज़ों के घेरे में
पापों की छायाओं के बीच
आत्मा पर बोझा-सा लादे हूँ।'

दुष्यंत कुमार की लेखनी में हमें प्रतिकूलताओं में अनूकूल बने रहने की एक अलख दिखाई पड़ती है। जीवन का दर्द उजागर होता रहता है। 'आग जलती रहे' शीर्षक में कवि 'चरैवेति-चरैवेति' सिद्धांत की बात करते हैं -

'एक चौथाई उमर
यों खौलते बीती बिना अवकाश
सुख कहाँ
यों भाप बन-बनकर चुका,
रीता,
भटकता-
छानता आकाश !
आह ! कैसा कठिन
...कैसा पोच मेरा भाग !
आग, चारों ओर मेरे
आग केवल भाग !
सुख नहीं यों खौलने में सुख नहीं कोई,
पर अभी जागी नहीं वह चेतना सोयी-;
वह, समय की प्रतीक्षा में है, जगेगी आप
ज्यों कि लहराती हुई ढकनें उठाती भाप !
अभी तो यह आग जलती रहे, जलती रहे,
ज़िन्दगी यों ही कड़ाहों में उबलती ही रहे।'

कला-पक्ष की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी दुष्यंत की कविता अत्यंत सक्षम है। सीधी-सादी, सरल अभिव्यक्ति, वार्तालाप की शैली, चिर-परिचित बिम्ब विधान तथा आम आदमी की बोली-बानी दुष्यंत कुमार के शिल्प-विधान की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

'लफ़्ज़ एहसास-से छाने लगे, ये तो हद है
लफ़्ज़ माने भी छुपाने लगे, ये तो हद है
आप दीवार गिराने के लिए आए थे
आप दीवार उठाने लगे, ये तो हद है'

दुष्यंत की कविताओं में पर्याप्त गेयता है, जिन्हें पढ़ने के दौरान नीरसता का बोध नहीं होता है। एक कविता शीर्षक 'आज' है, में दुष्यंत कुमार ने वर्तमान की प्रतीक्षा, विफलता, परिस्थिति की नीरसता का बोध कराया है, वहीं अपनी दूसरी कविता 'दृष्टान्त' में कवि अपने हृदय-व्यथा की तुलना अभिमन्यु की 'वीरगति' से करता है, और इस बात का मलाल करता है कि अभिमन्यु तो लड़ कर मारा, जबकि मेरा मन बिना लड़े ही हार गया. देखिये इन अंतिम पंक्तियों में-

'ओ इस तम में छिपी हुई कौरव सेनाओ!आओ!
धोखे से मुझे लील लो,
मेरे जीवन को दृष्टान्त बनाओ;
नए महाभारत का व्यूह वरूँ मैं
कुंठित शस्त्र भले हों हाथों में
लेकिन लड़ता हुआ मरूं मैं'

दुष्यंत की कविताएं पढ़ते समय यह आसानी से भान हो जाता है कि उनका शब्द-व्यूह ठीक उसी प्रकार बना है, जैसे शब्द और अर्थ दो बातें होते हुए भी एक दूसरे में समाहित है,ऐसे ही रचना के साथ पाठक एकाग्रता भंग नहीं होती है और आप एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँच ही जाते हैं। 'साथियों से' शीर्षक से उनकी रचित कविता की अंतिम पंक्तियाँ -

'साथियो,
सघन वन के सन्नाटे में मेरी आवाजें कभी नहीं हारीं,
ये लगा मौन जितना गहरा होगा आवाज पड़ेगी उतनी ही भारी
साथियो,
फर्ज मैं अपना निभा चला साथियो,
तुम्हारी आयी है बारी'

भाषा विचारों की वाहक होती है, कवि के विचार भाषा के माध्यम से ही व्यक्त होते है। दुष्यंत नई कविता के प्रतिनिधि कवि हैं। नई कविता में आज के युग की संवेदना है। भाषा में भी नये-नये प्रयोग हो रहे हैं। भाषा की प्रेषणीयता और सामान्य तक उसकी पहुँच के बोध से आज की कविता की भाषा सीधी और सरल तथा बोलचाल के अधिक निकट हो गई है। दुष्यंत कुमार ने कविता की भाषा में यद्यपि वैयक्तिक प्रयोग किए है किन्तु भाषा में आत्मीयता और सरलता का सर्वत्र ध्यान रखा है। इसलिए उनकी भाषा सामान्य जनमानस की भाषा है। इसलिए समकालीन कविता दुष्यंत कुमार की इसलिए भी ऋणी है क्योंकि कविता और पाठक के बीच उनका रचना कर्म एक सेतु का कार्य करता रहा है।

राजनीतिक चेतना के ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार

राजेन्द्र वर्मा
लखनऊ

'ग़ज़ल' प्रेम के विविध आयामों को प्रस्तुत करने की अद्भुत विधा है, लेकिन जब उससे पहले 'हिंदी' लग जाता है, तो उसकी भंगिमा बदल जाती है- वह चाहे कथ्य के स्तर की हो या भाषा की। हिंदी के मुहावरे में ढली भाषा में राजनीतिक और सामाजिक धरातल पर ग़ज़लें कहने का श्रेय निस्संदेह दुष्यंत कुमार को है। हालांकि उनके पहले भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमघन, सनेही, प्रसाद, निराला, चिरंजीत, रंग, नीरज, त्यागी आदि हिंदी ग़ज़ल को यथाशक्ति समृद्ध करने का उद्यम कर चुके थे, परंतु दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों ने जिस प्रकार आमजन की छटपटाहट और व्यथा को वाणी दी, वह उन्हें सबसे पृथक करती है। यह वह कथ्य की भंगिमा थी जो उस समय तक ग़ज़ल की दुनिया से बाहर थी, विशेषतः राजनीतिक परिवेश को लेकर। दुष्यंतकुमार (01.09.1933 - 30.09.1975) को केवल बयालीस वर्षों का जीवन मिला, लेकिन बीस-बाइस वर्षों के सृजन-काल में उन्होंने 'एक कंठ विषपायी' (काव्य-नाटक), 'और मसीहा मर गया' (नाटक), 'सूर्य का स्वागत', 'आवाज़ों

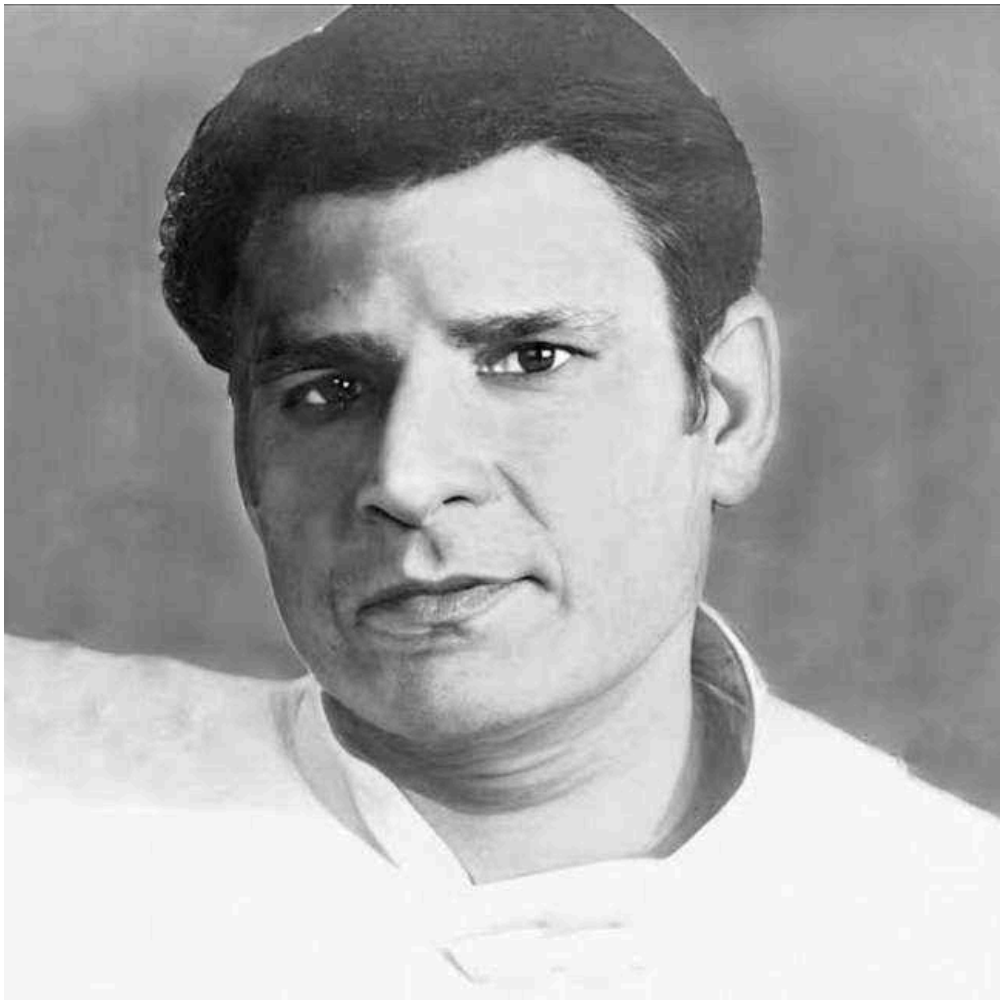

के घेरे', घेरे', 'जलते हुए वन का वसंत' (काव्य-संग्रह), 'छोटे-छोटे सवाल', 'आँगन में एक वृक्ष', 'दुहरी ज़िंदगी' (उपन्यास), 'मन के कोण' (एकांकी) और 'साये में। धूप' (ग़ज़ल-संग्रह) सहित 10 कृतियाँ हिदी जगत को दीं। लेकिन अंतिम कृति (साये में। धूप) ने उन्हें अपार लोकप्रियता प्रदान की। इस संग्रह में उन्होंने आम आदमी की पीड़ा को राजनीतिक संदर्भों में जिस शिद्दत से व्यक्त किया, वह आज भी प्रासंगिक है। इस संग्रह में केवल 52 ग़ज़लें हैं जो न केवल हिंदी ग़ज़ल की ज़मीन हमारे सामने लाती हैं, बल्कि वे सत्ता के छल-छद्म और आम आदमी की व्यथा, नाराज़गी और क्रांतिकारी सोच का प्रतिनिधित्व करती हैं। कथ्य और भाषा-शैली, दोनों की दृष्टि से भी यह संग्रह अनुपम है।

ग़ज़ल की भाषा को लेकर वे शुद्धतावाद के पक्ष में न होकर, बोलचाल की भाषा के पक्ष में थे। तभी संग्रह की भूमिका (मैं स्वीकार करता हूँ) में उन्होंने लिखा-"उर्दू और हिंदी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती हैं तो उनमें फ़र्क़ कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। मेरी नीयत और कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज़्यादा-से-ज़्यादा क़रीब ला सकूँ। इसलिए ये ग़ज़लें उस भाषा में कही गयी हैं, जिसे मैं बोलता हूँ।"

ग़ज़ल के प्रति अपने समर्पण और प्रतिबद्धता को वे कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं: मैं जिसे ओढ़ता-बिछाता हूँ/वो ग़ज़ल आपको सुनाता हूँ। वे सचबयानी के कायल हैं पर यह आसान कहाँ, फिर भी हिम्मत जुटा जब वे सच कहते हैं तो लोग सुनना नहीं चाहते।

यह विडम्बनापूर्ण स्थिति सभी रचनाकारों के साथ है। इस पर वे कहते हैं: हिम्मत से सच कहो तो बुरा मानते हैं लोग/रो-रो के बात कहने की आदत नहीं रही। हिंदी ग़ज़ल में लोचदार भाषा को बरतने का मौलिक प्रयोग दुष्यंतकुमार को है ही, हिंदी छंदों का सर्वाधिक प्रयोग भी उन्होंने किया है, जैसे - गीतिका, शुद्ध गीता, पीयूषनिर्झर, सिंधु, मनोरम, चंद्र, मोहन, विधाता, सुमेरु, दिग्पाल, भुजंगप्रयात, रजनी, ताटंक, लावनी। उर्दू के 2 लोकप्रिय छंदों में, मुजतस (पहली और आख़िरी ग़ज़ल) और मुजारिअ अख़रब (दसवीं ग़ज़ल) का भी प्रयोग मिलता है। ग़ज़ल को वे किसी हथियार की तरह पीड़ित के पक्ष में इस्तेमाल करते रहे। उनका साफ़ कहना था मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग, चुप कैसे रहूँ। हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम इक बयान है। यही कारण है कि वे ज़मीनी सचाई से इतर कोरी कलात्मक अभिव्यक्ति के पक्षधर न रहे। और कहा भी: मैं बेपनाह अँधेरों को सुबह कैसे कहूँ/ मैं इन नज़ारों का अंधा तमाशबीन नहीं।

इमर्जेंसी के दौर ने संवेदनशील रचनाकारों से अभिव्यक्ति की आज़ादी छीनकर उन्हें भले ही तोड़ दिया था, पर दुष्यंत कुमार की रचनाधर्मिता की तीव्रता को नहीं रोक सकी। उनकी ग़ज़लें उस दौर को पूरे दमख़म से हमारे सामने लाती हैं और अन्याय के विरुद्ध खड़े होने की ताक़त देती हैं। यह दुष्यंत की कला ही है कि अभिव्यक्ति पर कड़े पहरे के बावजूद वे अद्वितीय भाषा-शैली से चुप्पी को यों तोड़ते हैं-

“मत कहो आकाश में कुहरा घना है, यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।”

सत्ता का चरित्र किसी से छिपा नहीं है, पर उस पर प्रहार कैसे किया जाए- यह बड़ा सवाल है। दुष्यंत ने इसे बहुत सधे अन्दाज़ में उच्छास और व्यंग्य के अद्भुत मिश्रण में प्रस्तुत किया। इस मतले में उन्होंने उर्दू के 'शह' को हिंदी में बोले जाने वाले 'शहर' की तरह जानबूझकर प्रयुक्त कर हिंदी कवियों को ग़ज़ल की भाषा का रास्ता खोला, हालांकि उर्दू के उस्ताद आज भी इसकी आलोचना करते नहीं थकते-

कहाँ तो तय था चिराग़ां हरेक घर के लिए, कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए।

इसी क्रम में उनके कुछ और शेर देखिए जो आम आदमी की स्थिति और उसके लिए जिम्मेदार व्यवस्था को आईना दिखाते हैं-

वो आदमी नहीं है मुकम्मल बयान है,/ माथे पे उसके चोट का गहरा निशान है।

कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए, मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है।

सत्ता के परिवर्तन को लक्षित उनके ये शे'र गहन व्यंजना के उदाहरण बन चुके हैं-

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो, ये कँवल के फूल मुरझाने लगे हैं।

हो गयी है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए, इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

शोषण को जब समाज आत्मसात करने लगता है तो संवेदना मर-सी जाती है और सामाजिक मूल्य बदल जाते हैं। सामाजिक यथार्थ जटिल हो जाता है और उसकी अभिव्यक्ति और भी जटिल। इस प्रकिया में धार्मिक पाखंड की भूमिका भी कुछ कम नहीं। इन सब बातों की अभिव्यक्ति ग़ज़ल जैसी नाजुक विधा में आसान नहीं, लेकिन दुष्यंत ने उसे इतने प्रभावशाली ढंग से कर दिखाया कि वह आज भी मिसाल है-

धीरे-धीरे भीग रही हैं सारी ईंटे पानी में, इनको क्या मालूम कि आगे चलकर इनका क्या होगा?

यहाँ तो सिर्फ़ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं, ख़ुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा।

इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात, अब किसी भी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियाँ।.

सकारात्मक परिवर्तन तभी संभव है जब समाज भी जाग्रत हो और संश्लिष्ट यथार्थ को पहचाने, संभ्रम से ऊपर उठकर खुद अपनी राह तलाशे, ऊर्जा का संचार करे और सत्ता-व्यवस्था से कोई उम्मीद न रखे-

तुम्हारे पाँवों के नीचे कोई ज़मीन नहीं, कमाल ये है कि फिर भी तुम्हें यक़ीन नहीं।

इन ठिठुरती उँगलियों को इस लपट पर सेंक लो, धूप अब घर की किसी दीवार पर होगी नहीं।

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही, हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

मगर वे आगाह भी करते हैं कि हंगामा केवल हंगामे तक सीमित न रह जाए-

सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,
हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

राजनीति का चरित्र ऐसा है कि आम आदमी उसका शिकार होता आया है। शायर इस ओर पाठकों को आम आदमी की तरह संबोधित कर उसकी चेतना को जहाँ ऊँचा उठाता है, वहीं राजनीति करने वालों पर व्यंग्य भी करता है-

आप दीवार गिराने के लिए आए थे, आप दीवार उठाने लगे, ये तो हद है।

यथार्थ के अंकन में वे तीखे अवश्य हैं, पर उनका रवैया आशावादी हैं। वे जानते हैं कि आज के माहौल में क्रांति के अंगारे तलाश करना बेमानी है, चिनगारी से ही काम चलाना पड़ेगा, यों उसका महत्त्व भी कम नहीं। वे लोगों को बहकती हुई दुनिया को सँभालने की बात भी करते हैं-

रहनुमाओं की अदाओं पे फ़िदा है दुनिया, इस बहकती हुई दुनिया को सँभालो यारो!

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता, एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो !

दुष्यंत की बिम्ब-योजना अद्भुत है। प्रेम को लेकर उनका यह रूपक अपने आप में एक मिसाल है-

तू किसी रेल-सी गुज़रती है, मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ।

ग़ज़ल में तो ये एकदम टटका और अनूठा है। जिस जटिल यथार्थ की व्यंजना इसमें प्रकट हुई है, वह नई कविता में भी देखने को नहीं मिलती। रेल और पुल जैसे उपमान और रेल के गुज़रने से पुल के थरथराने की बात पाठक के हृदय को बेध देती है। एक ऐसा अपरिहार्य दुर्निवार कि जिसे सहज व्यक्त करना संभव नहीं। भाषा की दृष्टि से भी उन्होंने हिंदी और उर्दू शब्दों से सजी ऐसी भाषा विकसित की कि शब्द योजना के हिसाब से उनकी ग़ज़लें हिंदी ग़ज़लअथवा उर्दू ग़ज़ल में नहीं बाँटी जा सकती, तथापि हिंदी के मुहावरे और ग़ज़ल के परम्परागत कथ्य के विपरीत नवीन कथ्य और शैली के आधार पर उन्होंने ग़ज़ल की वह ज़मीन तैयार की, जिस पर आज न केवल हिंदी के कवि, बल्कि उर्दू के प्रख्यात ग़ज़लकार भी उनकी बनायी ज़मीन पर ग़ज़ल की रचना करना चाहते हैं।

भाषिक व्यंजना से परिपूर्ण अभिव्यक्ति की मारक क्षमतावाली उनकी ग़ज़लें आज भी गहराते तमस में सूरज की किरनें बनकर आश्वस्त करती हैं। संघर्ष और परिवर्तन उनकी राज़लों का मुख्य स्वर है। इसे संयोग कहें कि दुर्योग, आज भी स्थितियाँ इतनी विषम हैं कि उनकी ग़ज़लों की प्रासंगिकता और उद्धरणीयता दिनोंदिन बढ़ती जाती है। हालांकि कुछ ग़ज़लों में तुकांत की वे छूटें ली गई हैं जो अनुमन्य नहीं। और शिल्प की दृष्टि से शेर को खारिज करती हैं। उनकी दो ग़ज़लों

में मत्ले भी नहीं है, लेकिन यह असावधानीवश है, अज्ञानता के कारण नहीं। संग्रह के प्रकाशन के बाद दुष्यंत यदि जीवित रहते तो इन छोटी-मोटी कमियों का निराकरण अवश्य कर लेते, पर आज जब वे नहीं है, तो इन पर बात करने का कोई अर्थ नहीं। कहना न होगा कि ग़ज़ल में कथ्य और उसकी कहन-भंगिमा का ध्वनि से तादत्य होता है। इसमें तनापुर (स्वर की टकराहट) अगर कम-से-कम हो तो अच्छा माना जाता है। इस लिहाज से दुष्यंत कुमार को खूब सफ़लता मिली है। इसके अलावा, फ़िक्र को, जिसके लिए वे जाने जाते हैं. हर हाल में उन्होंने बचा रखा है। भाषा की अधिक सफाई और सांगीतिकता को भरने की कोशिश से भी वे बचे हैं। इससे उनकी कहन की ताज़गी आज भी बनी हुई है और प्रासंगिकता की बात ही क्या, वह तो आज भी उतनी ही दृष्टिगोचर होती है जो पचास वर्ष पहले थी। निस्संदेह, उनकी ग़ज़लें अपने कथ्य और भाषाई मुहावरे के चलते आज भी हिंदी की मानक राज़लें बनी हुई हैं।

दुष्यंत की ग़ज़लों में सामाजिक चेतना

रचना शास्त्री
बिजनौर, उत्तर प्रदेश

01सितम्बर1930को उत्तर प्रदेश के बिजनौर जनपद की नजीबाबाद तहसील के राजपुर नवादा नामक गाँव में जन्मे श्री दुष्यंत कुमार त्यागी हिन्दी ग़ज़ल के ऐसे शायर हैं जो अपने विद्रोही स्वभाव के लिए जाने जाते हैं। दुष्यंत युगबोध के कवि हैं, समकालीन समाज अन्तर्द्वन्द के जिस दौर से गुजर रहा था वह उनकी दृष्टि से अछूता नहीं है,वे मनुष्य के हृदय में पसरे अंतर्द्वंद को भली भांति समझ लेते हैं, वे देखते हैं कि एक ठंडापन मानवीय संबंधों के बीच पसर गया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि मनुष्य मनुष्य के बीच में दूरी बढ़ती जा रही है, लेकिन इसके बीच दुष्यंत यह भी भाँपते हैं कि कहीं ना कहीं मनुष्य इस बात से त्रस्त भी है, उसने भले ही भौतिक उन्नति कर ली है लेकिन मनुष्य से मनुष्य के बीच की दूरी उसे कहीं ना कहीं मानसिक रूप से कष्ट दे रही है, मनुष्य इस सबसे मुक्ति पाने को बेचैन है यही बात दुष्यंत को यह कहने के लिए प्रेरित करती है-

इस नदी की धार से ठंडी हवा आती तो है।
नाव जर्जर ही सही लहरों से टकराती तो है।
एक चिंगारी कहीं से ढूंढ लाओ दोस्तों,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

दुष्यंत की दृष्टि आमजन जीवन से जुड़ी हर समस्या को देखती है, वे देखते हैं कि वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है, समाज विभिन्न समस्याओं से घिरा है, मुनाफाखोरी, , कालाबाजारी, रिश्वतखोरी, महंगाई, जैसी समस्याएं दिन पर दिन बढ़ती जा रही हैं, तत्कालीन संदर्भ में प्रेम संबंध भी अछूते नहीं रहे हैं वह, भी स्वार्थ के वशीभूत होने लगे हैं, स्वार्थ लोलुपता ने मानव मन को पूरी तरह अपनी गिरफ्त में ले लिया है, समाज धर्म और जाति के नाम पर बांट दिया गया है, दुष्यंत के भीतर का शायर समाज की इस स्थिति को देखकर जनता को इस व्यवस्था से विद्रोह करने के लिए प्रेरित करता है उनका मानना है कि इन समस्याओं से निजात पाने के लिए जनता को अपना संघर्ष स्वयं ही करना होगा। इस संदर्भ में वे कहते हैं-

पक गईं हैं आदतें बातों से सर होंगी नहीं।
कोई हंगामा करो ऐसे गुज़र होगी नहीं।

दुष्यंत आम आदमी के सुख-दुख से सरोकार रखने वाले यथार्थवादी शायर हैं, वह भली भांति जानते हैं कि, मनुष्य के मुस्कुराते हुए चेहरे के पीछे तमाम दुख-दर्द, पीड़ाएं और चिंताएं छिपी हुई हैं-

सिर्फ शायर देखता है कहकहों की असलियत
हर किसी के पास तो ऐसी नज़र होगी नहीं।

आम आदमी जहाँ एक ओर भ्रष्ट व्यवस्थाओं से लड़ रहा है वहीं वह अपने भविष्य को लेकर भी निश्चिंत नहीं है, दुष्यंत आम जन के कवि होने के नाते इस मनोस्थिति को भली-भांति समझते हैं, वे अच्छी तरह समझते हैं कि सत्ताधारी ताकतें और भ्रष्ट अर्थतंत्र दोनों मिलकर आम आदमी को लूटने में लगें हैं। वे इन भ्रष्ट व्यवस्थाओं की अपनी ग़ज़लों में मुखर होकर भर्त्सना करते हैं। जनता से विकास के बड़े बड़े वायदे करके सत्ता पर काबिज होकर निज स्वार्थ की पूर्ति करने वाले तत्कालीन सत्ताधारियों को वे अपने इस शेर के माध्यम से चुनाव के समय उनके द्वारा किए गये वायदों की याद दिलाते हैं -

कहाँ तो तय था चरागाँ हर घर के लिए।
कहाँ चराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।

वे यह कहने में कोई खौफ नहीं खाते कि इस व्यवस्था में कोई भी दूध का धुला नहीं है चाहे वह सत्ता पक्ष में हो चाहे सत्ता के विपक्ष में, दुष्यंत के अनुसार चाहे सत्ता पक्ष हो या प्रतिपक्ष दोनों के ही पाँव भ्रष्टाचार के कीचड़ में सने हैं -

इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछी है,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।

पक्ष और प्रतिपक्ष संसद में मुखर हैं,
बात इतनी है कि कोई पुल बना है।

दुष्यंत समकालीन कविता के कवि हैं,और यह केवल दुष्यंत के समय का ही नहीं वर्तमान का भी कटु सत्य है कि आज भी ऐसे मनुष्य हैं जो दिन रात परिश्रम करके भी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते हैं, चुनाव के समय आज भी वायदों का झुनझुना इन्हें पकड़ा कर और बदले में इनका वोट लेकर राजनेता पाँच वर्षों के लिए अदृश्य हो जाते हैं और ये लोग जहां के तहां खड़े अपने जीवनसंघर्ष में पुनः लीन हो जाते हैं-

कहीं पे धूप की चादर बिछा के बैठ गये।
कहीं पे शाम सिरहाने लगा कर बैठ गए।

आम आदमी की इस पीड़ा से पीड़ित होकर दुष्यंत के भीतर का विद्रोही शायर जाग उठता है और वे इन करोड़ों निरीह बेबस और लाचार लोगों की जुबान बन जाते हैं -

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ।
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम बयान है।

सामाजिक चेतना सामाजिक संवेदनाओं पर टिकी होती है वर्तमान समय की विसंगतियों ने इन संवेदनाओं पर तीखे प्रहार किए हैं फलस्वरूप ये संवेदनाएं मिटी तो नहीं पर कमजोर अवश्य हुई हैं, वास्तव में ये संवेदनाएं ही मनुष्य को सचमुच मनुष्य बनाती हैं,ये संवेदनाएं जाति,धर्म, ऊँच-नीच,जैसी क्षुद्र भावनाओं से ऊपर उठकर एक

सभ्य और संवेदनशील समाज का निर्माण करती हैं, दुष्यंत भी चाहते हैं कि इन क्षुद्र भावनाओं से ऊपर उठकर अब फिर से ऐसे समाज का निर्माण किया जाये जहाँ मनुष्य को मनुष्य से कोई भय न हो,और इसके लिए मनुष्य को ही प्रयास करना होगा।इसी परिप्रेक्ष्य में वे अपने एक शेर में लिखते हैं -

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कँवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं।

वस्तुतः दुष्यंत कुमार त्यागी जी की गजलों का अध्ययन करने के पश्चात यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनकी ग़ज़लें सामाजिक संवेदनाओं से परि पूर्ण हैं,वे सामाजिक चेतना के उस सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दु को भी देख लेते हैं जिस पर किसी की दृष्टि नहीं जाती। वे वर्तमान व्यवस्था से क्षुब्ध ऐसे शायर हैं जो आम जन की आवाज होकर उभरे हैं। उनके शेरों में जनता अपनी आवाज पाती है,यही कारण है कि उनके अनेक शेर आज भी जनता की आवाज बनकर सड़क से संसद तक दोहराए जाते हैं और दोहराये जाते रहेंगे, क्योंकि उनमें वह तत्व विद्यमान है जो न केवल आज बल्कि आने वाले समय में भी समाज का प्रतिनिधित्व करेगा, उनके ये शेर हमेशा समाज के नेतृत्व कर्त्ताओं की आवाज बनकर उभरेंगे -

हो गयी है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए।
इस हिमालय से भी कोई गंगा निकलनी चाहिए।

समकालीन हिंदी ग़ज़ल और दुष्यंत कुमार

डॉ. रामावतार मेघवाल
सह आचार्य हिंदी
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा, राजस्थान

हिंदी साहित्य के इतिहास में समकालीन साहित्य एक अवधारणात्मक शब्द है, जिसका आशय 1960 के बाद के साहित्य से लिया जाता है। देश की आज़ादी से जो आस जनता ने लगाई थी वह मात्र 14-15 वर्षों में ही दम तोड़ती नजर आने लगी थी। व्यवस्था के प्रति आक्रोश, विरोध और छटपटाहट के स्वर उभरने लगते हैं। जनतांत्रिक व्यवस्था की विकृतियों का, शोषण की स्थितियों का, लोकतंत्र में मनुष्य की नियति का, आज़ादी की निरथर्कता के साथ-साथ भूख, बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, अन्याय, अमानवीयता, अजनबीपन, साम्प्रदायिक विद्वेष और खून-खराबा जैसे विषय साहित्य के केंद्र में आने लगते हैं। हिंदी ग़ज़ल भी इस परिवर्तन से अछूती नही नहीं रही और इस परिवर्तन के सूत्रधार बने-दुष्यंत कुमार त्यागी। हिन्दी ग़ज़ल को नई दिशा प्रदान करने का गौरव दुष्यंत कुमार को जाता है। 1 सितम्बर 1933 को बिजनौर के राजपुर नवादा गाँव में जन्में दुष्यंत कुमार त्यागी समकालीन हिन्दी राज़ल परम्परा के प्रमुख एवं प्रथम हस्ताक्षर हैं। अपनी गज़लों में देश की दुर्दशा का जो मार्मिक चित्र दुष्यंत ने प्रस्तुत किया, उसने हिन्दी काव्य के सीमित विषय की दीवारें तोड़ दी। दुष्यंत की गज़लों में उस आम आदमी की संघर्ष गाथा, सपनों का टूटना-जुड़ना, उम्मीदें, निराशा, संशय, दु:ख की छायाएं अपने समय से टकराने का हौसला और नये स्वप्न बुनने की अनुगूँज शामिल है।

डॉ. अनिरूद्ध सिन्हा लिखते हैं "दुष्यंत कुमार ने भारतीय काव्य साहित्य की समृद्ध यथार्थवादी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसे एक नया मोड़ दिया। जीवन की समस्याओं के समाधान, अन्याय, शोषण, दमन उत्पीड़न और असमानता की समाप्ति के साधन के रूप में समाजवाद को अपना आदर्श स्वीकार करते हुए गज़ल में समाजवादी यथार्थवाद की धारा प्रभावित की।" दरअसल आम आदमी की पीड़ा को अभिव्यंजना देने के सन्दर्भ में दुष्यंत ने अपनी पैनी दृष्टि से उसके दु:ख और दर्द को पहचानने की कोशिश की और जीवन से जुड़ी वास्तविकताओं का निरूपण 'साये में धूप' गजल संग्रह में किया। दुष्यंत लिखते हैं-

"कहाँ तो तय था चिरागां हरेक घर के लिए
कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए
यहाँ दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहाँ से चलें ओर उम्र भर के लिए।"

दुष्यंत ने आम आदमी की तकलीफों को भी अपनी गज़लों में स्वर प्रदान किया। जनता के दु:ख-दर्दों को अभिव्यक्त करना दुष्यंत अपनी जिम्मेदारी समझते हैं और इसीलिए कहते हैं कि

"मुझसे रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ, हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।"

दुष्यंत के गज़ल संग्रह पर विचार करते हुए डॉ. अनिरूद्ध सिन्हा लिखते हैं- दुष्यंत कुमार का एक मात्र गजल संग्रह 'साये में धूप है' जिसमें उनकी कुल 52 गजले हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने नये बनते समाज को नये मूल्य में ढालने का प्रयास किया है। नये समाज की परख तो उन्होंने की है साथ ही जीवन के सत्य को भी प्रत्येक स्थान पर ढूँढ़ने की चेष्टा की है। जीवन का यह सत्य आज के समाज का आधार भी है।" दुष्यंत समाज में परिवर्तन के पक्षधर थे, इसलिए उनकी इच्छा थी कि.प्रतिरोध के स्वरों को समर्थन मिलना ही चाहिए शायद इसीलिए उन्होंने लिखा है

हो गई है पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।"

दुष्यंत कुमार की गज़लें यधार्थ की भाव-भूमि पर लिखी गई हैं। डॉ. सिद्धनाथ कुमार की दृष्टि में "दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़लों में मुख्य रूप से सामाजिक अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, कवि का माध्यम अधिकांशतः परिवेश की अनुभूतियों पर ही रहा है।

दुष्यंत की ग़ज़लों को भाव और भाषा के धरातल पर समझने के दृष्टिकोण से 'कल्पना' पत्रिका में प्रकाशित दुष्यंत कुमार का आत्मकथ्य एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। अपनी ग़जलों के कथ्य पर विचार करते हुए दुष्यंत लिखते हैं सिर्फ पोशाक या शैली बदलने के लिए मैंने गज़लें नहीं लिखीं उसके कई कारण है। जिनमें सबसे मुख्य है कि मैंने अपनी तकलीफ को जिससे सीना फटने लगता है ज्यादा से ज्यादा सच्चाई और समग्रता के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाने के लिए ग़ज़ल कही। इसी प्रकार अपने आत्मकथा में भाषा पर विचार करते हुए वे कहते हैं कि "मेरी दिक्कत यह थी कि उर्दू मैं जानता नहीं और हिन्दी में मुझे मुहावरा और बोलचाल का वह बहाव नहीं मिला जिसके सहारे ग़ज़लें कही जाती हैं। मगर यही अज्ञानता मेरे लिए शक्ति बन गयी। क्योंकि मुझे लगा कि आम आदमी एक मिली-जुली जबान बोलता है। इसलिए मैंने उस भाषा की तलाश की जो हिन्दी की हिन्दी और उर्दू की उर्दू दिखाई दे।" दुष्यंत कुमार के इस आत्मकथ्य से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने हिन्दी कविता को एक नया मोड़ दिया। निःसंदेह दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से हिन्दी कविता को एक नया मुहावरा दिया, नई चेतना दी। एक ओर व्यक्ति के दु:ख-दर्द को अभिव्यक्ति प्रदान की तो दूसरी ओर व्यवस्था को चुनौती दी। वे समकालीन हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के 'मील के पत्थर' हैं जहाँ से हिन्दी ग़ज़ल में एक युग की शुरूआत होती है। इस कारण दुष्यंत कुमार समकालीन हिन्दी गज़ल परम्परा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

काव्य वीथी

....इस अँधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है

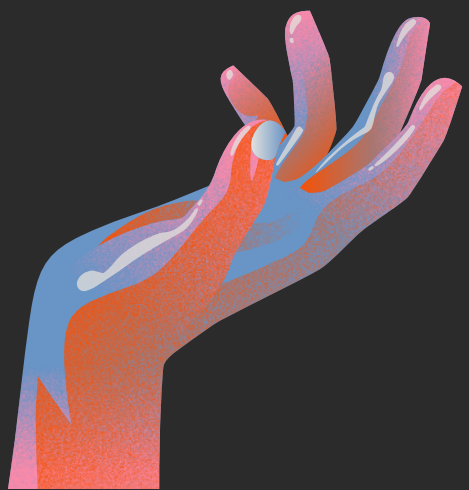

ग़ज़ल

अभिषेक कुमार सिंह
तिरुचिरापल्ली

आप वाजिब सवाल करते हैं
कैसे इतनी मजाल करते हैं

आप धमकी से भी नही डरते
भाई साहब कमाल करते हैं

वैसे कुछ ख़ास वो नहीं करते
सिर्फ क़ायम मिसाल करते हैं

जिनका खंज़र लहू का प्यासा है
वो मेरी देखभाल करते हैं

हम हैं इस लोकतंत्र के बकरे
हमको सारे हलाल करते हैं

ज़िन्दगी रूठती ही रहती है
हम भी केवल मलाल करते हैं

कोई भी ख़्याल तब नहीं आता
जब भी तेरा ख्याल करते हैं

बीते पलों के फिर वहीं मौसम नहीं हुए।
तुम भी नहीं हुए तो कभी हम नहीं हुए।

कितनी कलाइयाँ कटी कितने टंगे मिले,
बेरोजगार फिर भी यहाँ कम नहीं हुए।

गांधी, सुभाष और भगत को पढ़ा मगर,
उनकी तरह तो आज तलक हम नहीं हुए।

औरत पे ही तमाम लगी बंदिशें वहाँ,
आदम के भेष में जहाँ आदम नहीं हुए।

चूल्हों में झोंक दी गई जिंदा ही औरतें,
शौहर हुए जहाँ, कभी हमदम नहीं हुए।

कितनी उदास हो के उठी होगी सब 'अना'
लाशें वो जिन पे ठीक से मातम नहीं हुए।

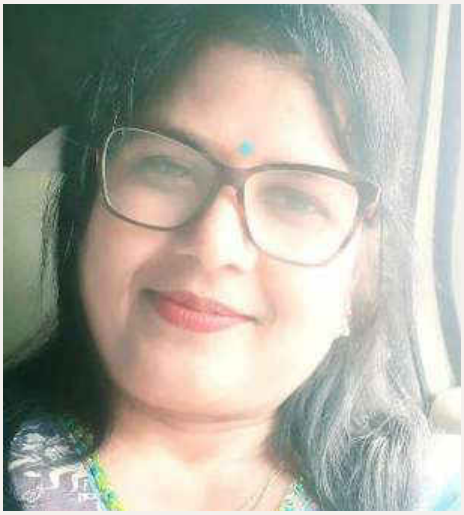

अनामिका सिंह
शिकोहाबाद, उ.प्र.

ग़ज़ल

अंजू केशव
जमशेदपुर, झारखंड

उठेंगी मंजिलें ज्यादा तो ढाँचा टूट जाएगा
तुम्हारा इस तरह प्यारा घरौंदा टूट जाएगा

कहा है लक्ष्मी तो मान भी लो लक्ष्मी उनको
अगर टूटेंगी बहुएँ तो बसेरा टूट जाएगा

जगा देना समय पर नौनिहालों को जरा अपने
रहे सोते तो फिर सपना सलोना टूट जाएगा

बनाने में इसे मत झूठ का तड़का लगाना तुम
न जुड़ पाएगा फिर जब ये भरोसा टूट जाएगा

नहीं काफी हैं सुविधाएँ उन्हें थोड़ा समय तो दो
बिना माँ-बाप के आँखों का तारा टूट जाएगा

ये शायर की है मिट्टी है गूंथी है ये भावनाओं से
इसे साँचे में ढालोगे तो सांचा टूट जाएगा

खूबसूरत, खूबसीरत, प्यार के जज़्बात हैं
हैं इकट्ठे एक तुझमें, ये अजब सी बात है

एक छोटा सा तबस्सुम अश्क के समंदर का
बन रहा परदा कसम से, ये अजब सी बात है

हर घड़ी यादें तेरी खीचे हैं तुझको मेरे पास
फिर भी दिल तुझको ही ढूँढे, ये अजब सी बात है

टूटना हो या बिखरना, करना तुझको है वही
है रज़ा दुनिया की जिसमें, ये अजब सी बात है

कुफ़्र क्या है, क्या हक़ीक़ी, सोचना बेकार है
सच वही जो लोग मानें, ये अजब सी बात है

पंडित अविनाश पांडेय
वाराणसी, उ.प्र.

ग़ज़ल

अविनाश भारती
मुजफ्फरपुर, बिहार

घरों से सभी को निकलना पड़ेगा,
दरिंदो के फन को कुचलना पड़ेगा।

कठिन है डगर फिर भी चलना पड़ेगा,
नहीं तो हमें हाथ मलना पड़ेगा।

ज़माने से पहले ज़रूरी है ख़ुद को,
बदलने से पहले बदलना पड़ेगा।

बता दो ऐ हाकिम तेरे राज में भी,
हमें और कितना यूँ जलना पड़ेगा।

यकीं रक्खो हरदम कि मंज़िल मिलेगी,
थकन भी कहे और चलना पड़ेगा।

कहोगे हक़ीक़त जो 'अविनाश' यूँ तुम,
सलाखों से होकर निकलना पड़ेगा।

नेह की बाँधती डोरियां बेटियाँ।
बेटियाँ, बेटियाँ, बेटियाँ, बेटियाँ।।

यूँ न मारा करो कोख में ही इन्हें
स्नेह जल से भरी बदलियां बेटियाँ।।

भाईयों की कलाई न सूनी रहे।
भेजती प्यार से राखियां बेटियाँ ।।

बेचकर अपना घर जिसको रुखसत किया।।
फिर क्यों जलती हुई होलियां बेटियाँ ।।

कल्पना, सानिया, शापना, सिंधु सी।
उन्नति की चढ़ें सीढ़ियां बेटियाँ।।

प्यार इन पर सदा तुम न्योछावर करो।
'भावना' से भरी चिट्ठियाँ बेटियाँ।।

भावना मेहरा
आगरा, उ.प्र.

ग़ज़ल

बृजेश गिरि,
मऊ,उ.प्र.

रात को नींद का ना आना भी अच्छा रहा
सुबह में ना उठने का बहाना भी अच्छा रहा।

मेरी तो उम्र कट गई यूँ बेफिक्री में,
जिन्दगी की धज्जियाँ उड़ाना भी अच्छा रहा।

निभ ना सका रिश्ता मेरा सबसे तो क्या हुआ,
दोस्तों से दोस्ती निभाना भी अच्छा रहा।

मैं आजमाता किसको सभी तो अपने थे,
खुद ही को खुद से आजमाना भी अच्छा रहा।

तुम यूँ ही थोड़े मान जाने वाले थे,
तुम्हें बहुत देर तक मनाना भी अच्छा रहा ।

किसी सफर के किसी भी पड़ाव पर मेरा,
चलते-चलते ठहर जाना भी अच्छा रहा।

बहुत बेचैन हूँ मैं आजकल अच्छा नहीं लगता
कठिन ही ठीक है जीवन सरल अच्छा नहीं लगता

घरों के साथ सत्राटे शहर में भी चले आए
इन्हें डर हादसों का कोई पल अच्छा नहीं लगता

गुजारी जिन्दगी बरसों बरस खामोशियाँ पहने
मैं डूबा हूँ कोई कह दे निकल अच्छा नहीं लगता

नदी सूखी है जलती रेत जंगल कट गए सारे
है मृगतृष्णा कहाँ से लायें जल अच्छा नहीं लगता

बहुत रफ्तार से मंजिल को अपनी रेल चलती थी
यहाँ ठहरा हुआ कोई भी पल अच्छा नहीं लगता

कभी बस्ती कभी जंगल चले हम बन के बंजारे
तुम्हारा प्यार तुम रखो ये छल अच्छा नहीं लगता

किशन तिवारी
भोपाल,म.प्र.

ग़ज़ल

के० पी० अनमोल
टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

जेब चालाक है सिक्के तो गिरा देती है
नोट का पर बड़ी मुश्किल से पता देती है

जुगनुओ! तुमने बड़ी देर उजाले बाँटे
देखें अब रात तुम्हें बदले में क्या देती है

घाटियाँ साँसों को देती हैं बड़ी ताज़ी हवा
और हरियाली नया ख़ून चढ़ा देती है

दस्तख़त करती है बहते हुए पानी पे हवा
और फिर जाने क्या नदियों को थमा देती है

देखकर एक किरण कैसे कोई मानेगा
अपने दम पर ये समुंदर को सुखा देती है

उम्रभर कोई उठाता है कहाँ बोझ 'अनमोल'
फल के पकने पे उसे शाख़ गिरा देती है

जागी आँखों सोए ज़्यादा
हमने सपने ढोए ज़्यादा

जाने क्यों उनसे मिल कर
हम बोले कम और रोए ज़्यादा

जंगल में तो राह न भटके
बस्ती में हम खोए ज़्यादा

दोष भला क्या दाग़ों को दें
हमने दर्पण धोए ज़्यादा

क्या बोलें क्यों गीत-ग़ज़ल में
हमने दर्द पिरोए ज़्यादा

'साहिल' को समझाने वालो
दरिया नाव डुबोए ज़्यादा

लोकेश कुमार सिंह 'साहिल'
जयपुर, राजस्थान

ग़ज़ल

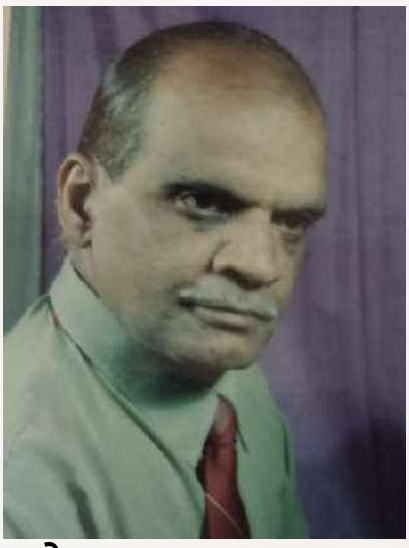

महेश अग्रवाल
भोपाल, म.प्र.

राष्ट्र का बन्दन रहा मुझमें
और जन गण मन रहा मुझमें.

शब्द को संवेदनाएं दीं,
दर्द का वाचन रहा मुझमें.

बँट गए दीवार के साए,
बिन बँटा आँगन रहा मुझमें.

दुश्मनों को भी क्षमा करना,
खूब अपनापन रहा मुझमें.

जेठ की तपती दुपहरी में,
प्रेम का सावन रहा मुझमें.

खाए हमने उम्र भर धोखे,
एक पागलपन रहा मुझमें.

साँसों का यों कृष्णमय होना,
एक वृंदावन रहा मुझमें

कट चुके उस पेड़ पर बैठी रही
एक चिंडिया शाख पर रोती रही

आरजू तो जिन्दगी जीने की थी
मौत लेकिन धमकियों देती रहीं

जिस्म की हर प्यास की दरिया मिला
रूह तो प्यासी की प्यासी ही रही

पत्थनी ने रास्ता रोका बहुत
पर नदी तो थी नदी, बहती रहीं

बाँद बदली से लिपटकर सो गया
रात भर फिर चाँदनी रूठी रहीं

आप आए बज़्म में तो यूँहुआ
शायरी फिर रात भर चलती रही

प्रवीण पारिक अंशू
ऐलनाबाद, सिरसा, हरियाणा

ग़ज़ल

राजमूर्ति 'सौरभ'
प्रतापगढ़, उ. प्र.

आदमी का देखकर किरदार चुप कैसे रहें,
लूट में शामिल हैं पहरेदार चुप कैसे रहें।

छीन ली मधुमास ने फूलों के होठों की हँसी,
मुस्कुराते हैं चमन में खार चुप कैसे रहें।

संस्कृति पर हो रहे हमले प्रगति के नाम पर,
सो रही है देश की सरकार चुप कैसे रहें।

जाति-मज़हब-वर्ग-भाषा में विभाजित आदमी,
एक आँगन सैकड़ों दीवार चुप कैसे रहें।

थे कभी मशहूर अपनी साफगोई के लिए,
पक्षपाती हो गए अख़बार चुप कैसे रहें।

वासंती हर डाल मिले,
हर्षित पूरा साल मिले।

आपाधापी जंग न हो,
जीवन को सुर ताल मिले।

दिन भर गुज़रे चैन सहित,
रोटी सब्ज़ी दाल मिले।

अब जो मीत बनाऊँ वो
दिल से मालामाल मिले।

राम सरीखा जो भी हो,
सिंदूरी रवि भाल मिले।

मज़हब खेले फाग अगर,
मानवता से लाल मिले।

यमुना पाठक
जमशेदपुर, झारखंड

समकालीन कविता

सुरेंद्र वाजपेयी
वाराणसी, उ.प्र.

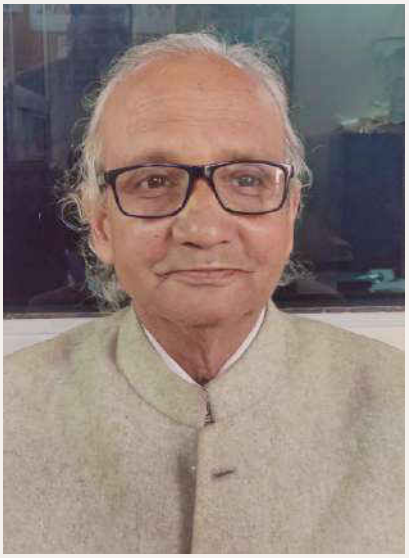

कविता - काशी

जैसे रस की गगरी,
अपनी काशी नगरी।

सुबह किरन-सी, चहकी-चहकी,
नव-पलाश-सी, दहकी-दहकी,
है लिए खड़ी छतरी,
अपनी काशी नगरी।

ध्यान धाम की, गंगा-तट की,
अविनाशी है, अक्षयवट-सी,
है बम-बम की लहरी,
अपनी काशी नगरी।

अगम-सुगम-सी, नंदन वन-सी,
धूप, दीप, अक्षत, चंदन-सी,
है पुरियों की पगरी,
अपनी काशी नगरी।

तंत्र-मंत्र की, ठाठ-बाट की,
गली-गली की, घाट-घाट की,
है भेद भरी गहरी,
अपनी काशी नगरी।

बातों की मस्ती ऐसी है,
मस्ती की ऐसी-तैसी है,
है कबिरा की चकरी,
अपनी काशी नगरी।

निर्मल मन-सी, रेत पड़ी है,
हाथ उठाए, नाव खड़ी है,
है तुलसी की शबरी,
अपनी काशी नगरी।

समकालीन कविता

अनिता रश्मि
राँची, झारखण्ड

कविता - अब चुप न रहो

सारे भेद खोलने दो कविता
कवियों के कोने अंतरे में घुसकर
किसान की आत्महत्या
बेटी की भ्रूण हत्या
बेटों के आत्मघाती हमले,
पँख पसारे बगूलों सा
दो फैलने सारे राग-विराग समय के

बेटियों ने कैसे आँचल को
बना लिया है परचम
सुपुत्रों की कैसे खड़ी हो गई लंबी फौज
कैसे धरित्री 'औ' आकाश सम
माता-पिता पड़ गए अकेले
कैसे हमने ही थमाई अगली पीढ़ी को
तरक्की, कामयाबी, भौतिक उन्नति के
सपने देखने की हसरतें
हमसे दूर रह आगे सड़क संग
चलते रहने की इकलौती सीख
लिखो कविता इस पर भी लिखो

तो लिखो कविता
सागर की उदारता
नदी-नद निर्झरिणी की
मुस्काती मीठे ख़्वाबों की मीठी रातें
या फिर उन पर पड़ती यमराज की
कुदृष्टि की अकथ कथा
चुप नहीं रहो अब

और जो भी लिख रहे हैं
इन सब पर अनवरत,
उन पर भी तो लिखो कविता।

समकालीन कविता

अश्वनी अकल्पित
नई दिल्ली

कविता - कमज़ोर नज़र

पास की और दूर की नज़र कमज़ोर है मेरी
मगर जो अंतर्दृष्टि है बड़ी पुरज़ोर है मेरी ...
यूँ मोटे चश्मे से सब स्पष्ट निखर आता है
चश्मे बगैर भी मुझको कुछ है जो नज़र आता है...
स्पष्ट देख पाता हूँ मैं शब्दों के पीछे अंतर्द्वंद्व
प्रतिध्वनि अकथ्य की चाहे कितनी भी हो मंद...
दिखती हैं मुझको अप्रकट अनकहे शब्द की गुत्थियां
अव्यक्त विचारों से निर्मित आकृति की सुर्ख़ियाँ...
मन की परतों में रखे हुए निष्पाप सहेजे गए वाक्य
हृदयपृष्ठ पर उभरे है उलटपुलट सारे जज़्बात...
मोटे चश्मे के पीछे जो हैं झाँक रहीं आँखें मेरी
शब्दों की सच्चाई को नि:शब्द समझकर आती हैं...
पढ़े हैं मैंने चश्मे बिन अपनेपन के निर्मल भाव
वेदना के मौन स्वर भी हृदय की पीड़ाएँ और घाव...
मन की आँखों से भी जब इतना कुछ देखा जाता है
तो आँखों की कमज़ोरी का फिर अर्थ कहाँ रह जाता है

समकालीन कविता

अवधेश तिवारी
छिंदवाड़ा, म.प्र.

कविता - तुम सरस श्रृंगार मेरे.....

तुम सरस श्रृंगार मेरे
तुम सरस श्रृंगार प्रियतम!

जग अपरिचित व्योम-सा है
मैं विहग की वेदना-सा
और तुम इस वेदना के
हो अमर आधार प्रियतम !

मैं कहाँ? निस्सीम के पथ पर कहाँ अधिकार मेरा?
अश्रु के पाथेय लेकर, खोजता अपना सवेरा।
चल, जहाँ बसता सदा आलोक का संसार प्रियतम!

गीतके परिधान में हँसती रही मेरी हताशा,
मैं अकिंचन, और यह मेरी अकिंचन-सी पिपासा।
अब समर्पित है तुम्हें इसकी मधुर मनुहार प्रियतम!
लो प्रणय अभिसार इसके,
लो प्रणय-अभिसार प्रियतम!

नवगीत

वंदना चौहान
आगरा, उत्तर प्रदेश

वेदना के स्वर हैं मुखरित, मौन तोड़ें अब अधर।
जो चुभे वन वीथियों में, शूल हैं अब बेअसर ।

खो चुके हम, बहुत तेरी, कामनाओं में सजन
पर न पाए,भावना के, प्रीति के पावन सुमन
आप जो भी उचित समझें, सोचकर जीते रहे
घूँट अपमानों के हरदम, प्रेम में पीते रहे
पर सहेंगे हम नहीं अब, यातनाओं के समर।
वेदना के स्वर हैं मुखरित.....

मानकर के देव अपना, साथ हम चलते रहे
देवियाँ हमको बताकर, तुम सदा छलते रहे
कौमुदी का रूप नारी, कह हमें भ्रम में रखा
छल-प्रपंचों की प्रथा से, जब मिला मौका ठगा
बोध हमको हो गया है, है फँसी नैया भँवर।
वेदना के स्वर हैं मुखरित.....

Sep_Oct
2024

स्केच आर्ट

वि वे क मि श्रा

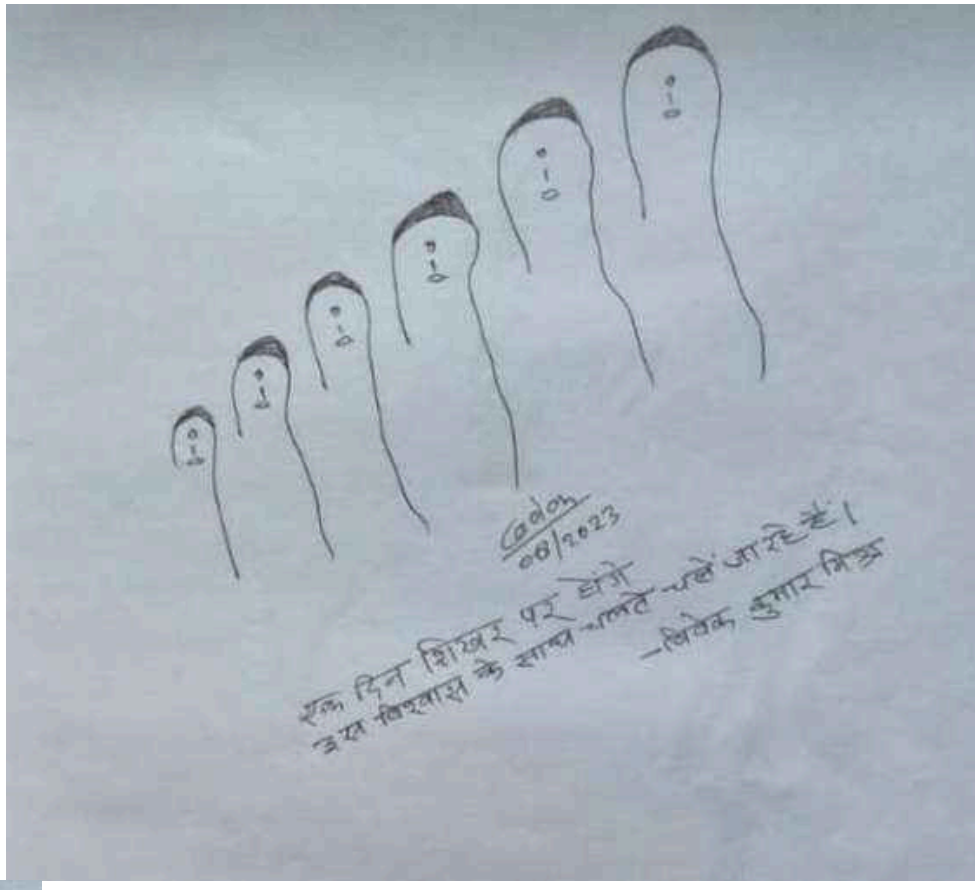

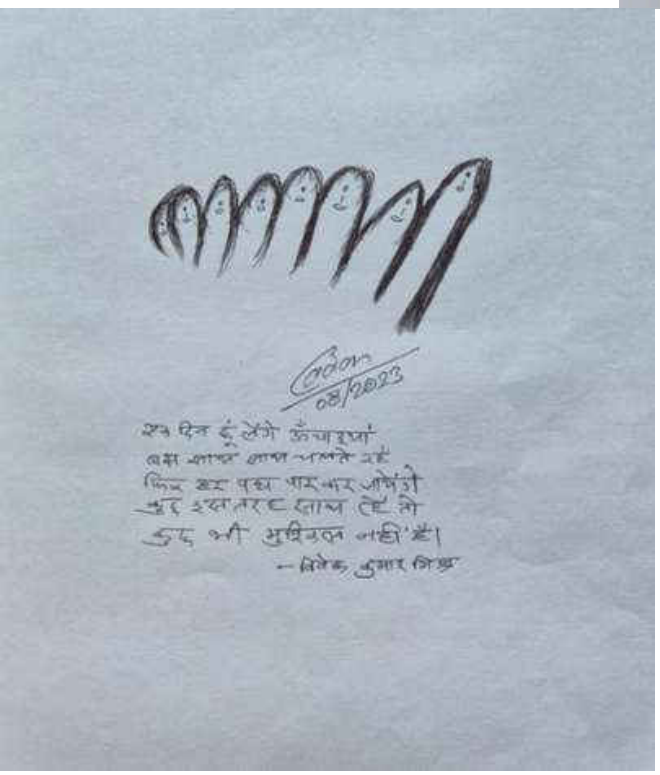

विवेक मिश्रा,
प्रसिद्ध लेखक, कवि
कोटा राजस्थान

स्त्री जीवन का रंग : बहुरंग

पुस्तक समीक्षा

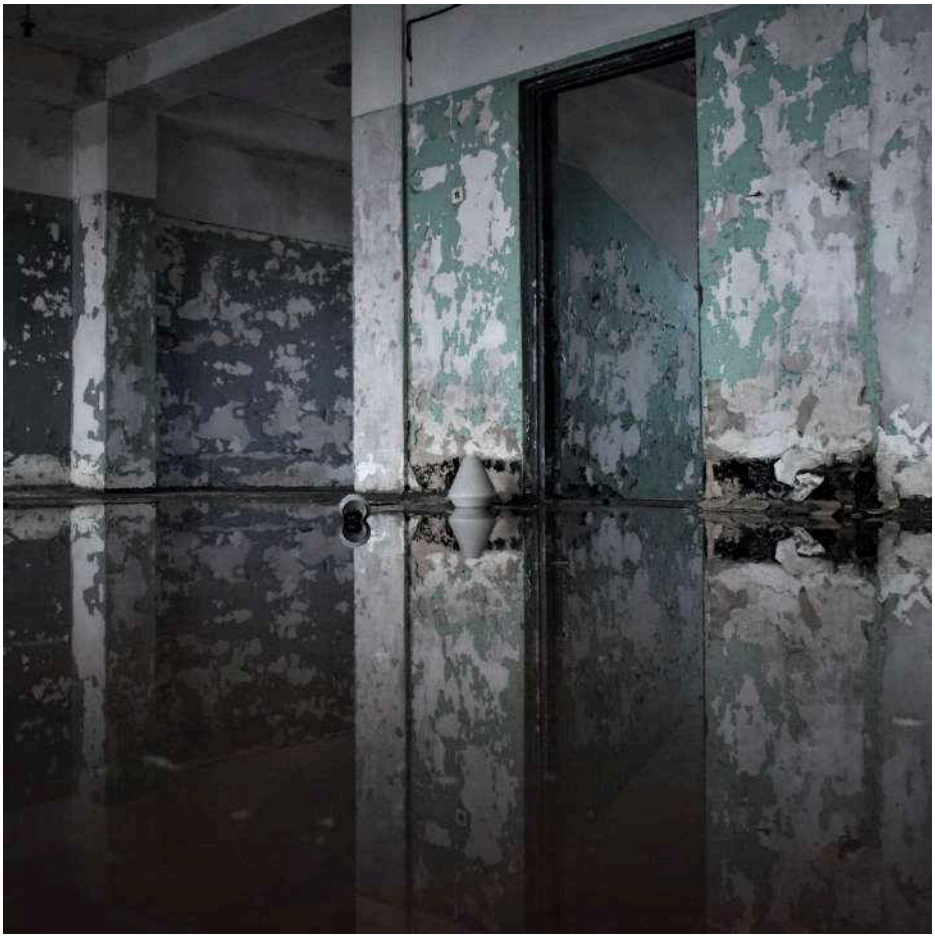

समीक्षक :-
डॉ कुमारी उर्वशी

पुस्तक का नाम :- बहुरंग
प्रकाशक का नाम :-
दिशा इंटरनेशनल पब्लिकेशन
मूल्य :-₹100
लेखिका :- डॉ किरण कुमारी

जैसा कि पुस्तक के नाम से ही स्पष्ट है "बहुरंग" को लेखिका डॉ किरण कुमारी ने जीवन के विविध रंगों से भरा है। जिन्हें कविता पढ़ने का चाव है, ये किताब उनके लिए है। यह पुस्तक ऐसी अनेक अजूबी घटनाओं से भरी है, जो हरेक के जीवन में नहीं होतीं। राग-विराग की एक अनवरत यात्रा यहाँ देखती हूँ, जिनकी कभी-कभी मैं भी साक्षी रही।

भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति देखी जाए तो वह वंचित समुदाय से न होकर के भी वंचित होती हैं। स्त्रियां ही संतति की परम्परा में मुख्य भूमिका निभाती हैं फिर भी प्राचीन समाज से लेकर आधुनिक कहे जाने वाले समाज तक स्त्रियां उपेक्षित ही रही हैं। उन्हें कम से कम सुविधाओं, अधिकारों और उन्नति के अवसरों में रखा जाता रहा है, इसी कारण महिलाओं की परिस्थिति अत्यन्त निचले स्तर पर है। इसलिए जब कलम एक स्त्री के हाथ में होती है तब वह अपनी तकलीफ लिखने से स्वयं को रोक नहीं पाती है। जब किरण जी लिखती हैं कि "उलझ गई हूँ" /अनजानी प्रतीक्षा में/ उलझ गई हूँ/कई बार /अपने ही जाल में/ फंस जाती है मकड़ी/अपने ही पंखों में/ बेबस, छटपटाता पखेरू/अपने ही किनारों पर /सिर पटकती धारा / अपनी ही पालिता /अमर लता में सूखता पेड़/ है रिक्त होता जा रहा/ अमृत -घट । तो इन पंक्तियों में जाने कितनी स्त्रियों की उलझन दिखती है।

कविता "अनाम रिश्ता" में वह लिखती हैं कि सुहागिन साँझ का/ क्षण क्षण के कड़वे तीखे अभाव, /विद्युत की एकरस अनुपस्थिति /बदली के साथ छप्पर के आँसू /
सब खो गये थे../बादलों के चूल्हे में /लहक रहा सूरज/
बन रही थी सब्जी/जिसमें भाप उड़ रही थी।/ गोया कि डूब रहा है /प्रसन्न दिखा सूरज/क्या हर्ज/ डूबने का अपना गहरा नशा/ सोचना क्या है? क्योंकि नारी ममतामयी है, त्यागमयी है महिलाएं त्याग के बलबुते पर समाज के हर पहलु से जुडी हुई है । वहआत्मनिर्भर और पढ़ी लिखी हैं एवं अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक हैं । इनकी शिक्षा से आज नौकरी पेशा महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। हमारे समाज में महिलाओं की निःस्वार्थ सेवा हर क्षेत्र में है। बावजूद इसके हत्या, घरेलू हिंसा, दहेज, यौन प्रताड़ना, वैधव्य आदि को सम्मिलित किया जाए तो स्त्रियों की समस्याएं अनगिनत हैं ।

"किसने जाना है" कविता में किरण जी लिखती हैं कि कंठ में रोक/उमड़ते आँसुओं को/ चिपका ली थी होठों पर हँसी।/ पुष्प हो गये हैं/पर्याय प्यार का/ उनके मुरझाने के ख्याल से ही/ कुम्हलाने लगा है मेरा वजूद।/ उत्साहपूर्ण सुबह/तबदील हो गई है/एक मरियल दिन में/ढ़ेर सारी बातें/इस बार भी/रह गई हैं शेष/ इच्छाएँ पागल लहरों की मानिन्द /किनारों पर सिर पटकती हैं।

नारी जीवन पर आधारित कविताओं की इस पुस्तक को पढ़ने के बाद सोचा कि अगर हिंदी समाज को इसके बारे में बतलाया जाए तो कैसा रहे? कई अर्थों में ये पुस्तक क़िस्सों के रूप में अपनी ही तरह की कविता है। इस पुस्तक को मिली सफलता और लोकप्रियता ने उन्हें और लिखने के लिए उत्साहित किया, यह भी सच है। उनके भीतर एक ऐसा आयाम है, जो पाठकों के अंतर्मन को सीधे छूता है। सरलता, मार्मिकता, स्थानिकता और सहज-मनुष्यता इस काव्य संग्रह की अंतर्वस्तु है। एक तारतम्य में बीते सालों में लिखी इन कविताओं का एक संकलन के रूप में आना विशेष बात है।
बिहार के ग्राम-अंचल और जनपद की इन कविताओं में एक मध्यवर्गीय जीवन के ब्योरे साकार हुए हैं। पुस्तक को उन्होंने अपने स्मृति शेष पूज्य पिताजी रामाश्रय सिंह एवं पूज्य माताजी वैदेही देवी को सादर समर्पित किया है। मैंने पाया है कि साहित्य में वैयक्तिकता को उतना स्थान जाने किन कारणों से नहीं मिला है और मध्यवर्गीय स्त्री का जीवन तो साहित्य की मुख्यधारा से लगभग पूरी तरह से ओझल है। जिस धरती पर लेखिका का जीवन बीता, उसे उनकी ओर से यही भेंट वे एक लेखिका के तौर पर दे सकती हैं।
पुस्तक की भाषा सरल, मुहावरेदार और खूबसूरत है। परिवेश आर्थिक उदारीकरण से पहले वाले भारत की है तो कुछ उस पुरानी दुनिया की झलक देने वाली, जिसकी आभासी यथार्थ के साथ अंत:क्रिया अभी आरम्भ ही हुई थी। इस लेखिका का यह देशी,सरस रूप पाठकों को लुभाएगा, इसमें मुझको तो कोई संदेह नहीं है। जिनको काव्य में रस मिलता हो, उनके लिए यह सुख देने वाली पुस्तक है। जिन्हें नहीं है, उनके लिए यह नित्य की सूचना मात्र है।

विनय मिश्र जी की ग़ज़ल

आँसुओं को ही पसीने की कमाई सोचकर
बात बिगड़ी थी मगर हमने बनाई सोचकर

क्या हुआ क्यों आपके माथे पे बल पड़ने लगे
हमने पहली बार जब गरदन उठाई सोचकर

कुछ न सोचो तो बड़ी सुविधा है लेकिन दोस्तो
सारे ख़तरे सिर्फ़ देते हैं दिखाई सोचकर

हैं अँधेरे एकजुट बिखरी हुई है रोशनी
जीतनी है हौसलों से ये लड़ाई सोचकर

है कहाँ वो प्यार,वो तहजीब, रिश्तों की चमक
बात हमने ये तबीयत से उठाई सोचकर

इस ठिठुरती ज़िन्दगी को देर तक राहत मिली
तेरी यादों की अँगीठी जब जलाई सोचकर

मुस्कुराहट की जगह चेहरे पे आया था तनाव
फिर ग़ज़ल गाकर नहीं हमने सुनाई सोचकर

तेरी यादों में खोया वक्त निकला
बुरा जितना हो अच्छा वक्त निकला

मैं अपनी ज़िन्दगी में मर चुका हूँ
मेरे हिस्से में मुर्दा वक्त निकला

उलझकर रह गया बेचैनियों में
बताऊँ क्या कि कैसा वक्त निकला

मेरे ही सामने से देखता हूँ
किसी इक अज़नबी- सा वक्त निकला

समझता था समंदर को ही गहरा
समंदर से भी गहरा वक्त निकला

तुम्हारे हाथ मेरे हाथ में थे
मेरे हाथों से भी क्या वक्त निकला

कभी वापस नहीं आना है कहकर
न जाने कब पुराना वक्त निकला

कृतिका सिंह के कार्टून

कृतिका सिंह जी उभरती हुई कार्टूनिस्ट हैं, जीवन के विविध पक्षों पर आपके सीधे हस्तक्षेप करते कार्टून बहुत लोकप्रिय हैं, आप कृतिका जी को उनके फेसबुक पेज Kritika cartoonist (https://www.facebook.com/cartoonistkritika?mibextid=ZbWKwL) पर फॉलो भी कर सकते हैं

प्रस्तुत है कृतिका जी के जीवंत कार्टून :

वीथिका ई पत्रिका :आपसे आपकी बात

वीथिका ई पत्रिका साहित्य, कला, संस्कृति और विज्ञान को समर्पित मासिक ई पत्रिका है. आप हमारे वेबसाइट www.vithika.org से पत्रिका डाउनलोड कर सकते हैं, व लेखों, रचनाओं पर हमें अपने विचार भी भेज सकते हैं. वीथिका ई पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, लेखक के अपने विचार हैं, इनसे या इनके विचारों से पत्रिका या पत्रिका की सम्पादकीय समिति किसी प्रकार की सहमति नहीं रखती.

हमें अपनी रचना या लेख भेजने के लिए आप उसे हिंदी भाषा में टाइप कर हमें जीमेल या whatsapp कर सकते हैं :

Gmail : vithikaportal@gmail.com
whatsapp: 8175800809